

संस्कृत-साहित्य-ग्रन्थमाला—ग्रन्थ ७ ।

साहित्य-सुषमा ।

अर्थात्

[हिन्दी पद्य-साहित्य का एक अपूर्व ग्रन्थ]



संग्रहकर्ता

पं० रामदहिन मिश्र काव्यतीर्थ ।



प्रकाशक—

ग्रन्थमाला-कार्यालय

बाँकीपुर



तृतीय संस्करण]

१९२७

[मूल्य आठ आ०]

पं० देवीदयाल वाजपेयी द्वारा—

"पञ्चानन प्रेस" सप्तसागर बनारस में मुद्रित ।

सूचीपत्र ।



विषय	पृष्ठ
चन्दवरदाई	१
त्रिधापति ठाकुर	१
✓ कबीर साहेब	२
मीराबाई	८
गुरु नानक	६
सूरदास	१०
मलिक मुहम्मद जायसी	१६
✓ तुलसीदास	१८
दादू दयाल	३३
✓ रहीम	३४
रसमान	३६
केशवदास	३८
✓ सुन्दरदास	४१
✓ बिहारीलाल	४२
✓ भूषण	४४
मतिराम	५०
देव	५१

विषय.

पृष्ठ.

गुन्द	.	.	५४
यैतास	.	.	५६
नागरी दामर	.	.	६१
द्वितपुन्दापन	.	.	६३
गिरिधर	६५
पद्माकर	.	.	६९
ग्याल	..	.	७५
✓भारनेन्दु	.	..	७७
श्रीधर पाठक	.	.	८०
अयोध्या मिह उपाध्याय	.	.	८५
लाला भगवान दीन			८५
रामचरित उपाध्याय	.	.	८६
मैथिलीशरण गुप्त	.	..	१०२
श्रीयुक्त 'सनेही'	१०४
रूपनारायण पाण्डेय		..	१०५
कामता प्रसाद गुरु		.	१०६
लोचन प्रसाद पाण्डेय	.	.	११२
रामदत्त मिश्र	.	.	११३



वक्तव्य ।



हमारे हिन्दी-साहित्य में कैसे अनमोल रत्न भरे पड़े हैं, इसके ज्ञान और लाभ हमारे नवयुवक विद्यार्थियों को बहुत कम होते हैं। इसका कारण यह है कि वे हमारे साहित्य से बहुत दूर रहते हैं। माध्यमिक कक्षा तक के साहित्य में उन्हें कुछ पद्य गद्य के साथ पढ़ने को मिल जाते हैं, पर उच्च कक्षा में पहुँचते ही पहुँचते पद्यों से उनका पिण्ड एक प्रकार छूट ही जाता है। जहाँ कहीं पद्य पाठ की कुछ चर्चा है पर वह नाम मात्र की और वे सिलसिलेवार। उसमें भी व्यक्ति-विशेष की ही कुछ कविताओं के पढ़ाने की प्रायः व्यवस्था दी गई पड़ती है न कि कविवर्ग की सकल कविताओं की। यदि हम दूसरी भाषाओं की ओर दृष्टि उठाने हैं तो इस प्रकार की प्राचीन कवियों की सकलित कविताओं के अनेक ग्रन्थ दीख पड़ते हैं। पर हमारे साहित्य में इसका एक दम अभाव है। इससे जो उद्देश्य लेकर विश्वविद्यालयों के प्रवेशिका-परीक्षार्थी विद्यार्थियों के लिये 'साहित्यसुधाकर' नामक हिन्दी गद्य साहित्य की पुस्तक निकाली गयी है उसी उद्देश्य से यह भी पुस्तक निकाली जाती है।

आदि प्राचीन तथा मिश्र-बन्धु-विनोद, कविता कौमुदी आदि नवीन संग्रह पुस्तकों तथा सरस्वती आदि पत्र पत्रिकाओं से चुनी हैं। इनका क्रम और परिचय प्रायः मिश्र-बन्धु विनोद के अनुसार ही, यद्यपि उसमें कहीं २ व्यतिक्रम है, रक्ष्य है। अतएव मैं इस साहाय्य-प्राप्ति के लिये उन सबों का कृतज्ञ हूँ। जिन लोगों ने अपनी २ कविताओं को उद्धृत करने की अनुमति देकर मुझे अनुगृहीत किया है उनको भी हार्दिक धन्यवाद देता हूँ।

ग्रन्थमाला मालाकार

रामदहिन मिश्र ।



साहित्य-सुषमा ।

हिन्दी के आदि महाकवि चन्द वरदाई कृत ।

मंगलाचरण ।

नमो देव देवाधि नमो नाभाय कमल वर ।
नमो माल पंकजन नमो वर कनक कमल वर ॥
नमो नन वर कमल नमो चित्तह अधिकारिय ।
नमो विकट भजनन नमो ससार सुधारिय ॥
नमो चन्द नन्दन नवल नद ग्रेह प्रखण्ड गुर ।
दिप्पहि जुदेव देवाधि तुहि मुगति समप्यन तिनहि उर ॥१॥

महाकवि मैथिल-कोकिल विद्यापति ठाकुर कृत ।

विनय के पद ।

माधव बहुत मिनति करि तोय ।
देह तुलसि तिल देह समपिनु दिया जनि छाड्य मोय ॥
गनइत दोष गुन लेस न पाययि जय तुहुं करिनि विचार ।
तुहुं जगत जगनाय कहायनि जादाहिर न इ छार ॥
किय मानुष पनु पापी जे जनमिय श्रथमा कीट पतङ्ग ।
करम विपाकि गतागत पुन न मति रह तुथ परसङ्ग ॥

हाड बड़ा हरि भजन कर, द्रव्य बड़ा कछु देय ।
 अकल बड़ी उपकार कर, जीवन का फल येह ॥ ४ ॥
 देह धरे का गुन यही, देह २० कछु देहु ।
 घहुरि न देही पाइये, अबकी देहु सो देहु ॥ ५ ॥
 सत ही में सत बाँई, रोटी में तो टुक ।
 यह कबीर ता दास को, कयहुं न आवै चूक ॥ ६ ॥
 सन्तोष ।

साह गई चिन्ता मिटी, मनुवां वे परवाह ।
 जिनको कछु न चाहिये, सोई साहसाह ॥ १ ॥
 सागन गये सो मरि रहे, मरे सो मागन-जाहि ।
 तिनसे पहिले वे मरे, होत करत जो नाहि ॥ २ ॥
 गोधन गजधन वाजिधन, और रत्नधन खान ।
 जय आवै संतोष धन, सब धन धूरि समान ॥ ३ ॥
 मरि जाऊँ माँ गूँ नहीं, अपने तन के काज ।
 परमारथ के फारने, मोहि न आवै लाज ॥ ४ ॥
 धैर्य ।

घोरे घीरे रे मना, घीरे सब कुछ होय ।
 माली सोचै सौ घड़ा, अतु आवे फल होय ॥ १ ॥
 कबिरा घीरज के धरै, हाथी मन-भर खाय ।
 टुक एक के कारने, श्वान घरै घर जाय ॥ २ ॥
 कबिरा भँवर में धैठि कै, भौचक घना न जोय ।
 इधन का भय छाड़िये, करता करै सो होय ॥ ३ ॥
 मैं मेरी सब जायगी, तब आवैगी और ।
 जय यह निबल होयगा, तब पावैगा ठौर ॥ ४ ॥

वपदेश के दोहे ।

- काल करै सो आज कर, आज करै सो अब ।
 पल में परलै होयगी, बहुरि करैगो कब ॥
 या दुनिया में आयके, छाड़ि देइ तू पैठ ।
 लेना होय सो लेइ ले, उठी जात है पैठ ॥ २ ॥
 कबीर आप ठगाइये, और न ठगिये कोय ।
 आप ठगे सुख उपजे, और ठगे दुख होय ॥ ३ ॥
 जो तोको काँटा बुचे, ताहि बोव तू फूल ।
 तोहि फूल को फूल है, चाको है तिरसूल ॥ ४ ॥
 दुर्बल को न सताइये, जाकी मोटी हाय ।
 बिना जीव की खास से, लोह भसम हो जाय ॥ ५ ॥
 पेसी बानी बोलिये, मन का आपा पोय ।
 औरन को शीतल करै, आपहुँ शीतल होय ॥ ६ ॥
 बोलत ही पहचानिये, साहु चोर को घाट ।
 अतर की करनी सवै, निकसे मुह की घाट ॥ ७ ॥
 कथनी मीठी खाँड सी, करनी बिपकी लोय ।
 कथनी तज करनी करै, तो बिप से अमृत होय ॥ ८ ॥
 साँच बराबर तप नहीं, भूठ बराबर पाप ।
 जाके हिरदे साँच है, ताके हिरदे आप ॥ ९ ॥
 घुरा जो देखन में चला, बुरा न मिलिया काय ।
 जो दिल योजौ अपना, मुझ सा बुरा न होय ॥ १० ॥
 दाया दिल में राखिये, तू क्यों निरदय होय ।
 साई के सब जीव हैं, कीडी कुजर सोय ॥ ११ ॥
 परनारी पैनी छुरी, मत कोई लागे अंग ।
 रावन के दस सिर भये, परनारी के सग ॥ १२ ॥

निन्दक नियरे राखिये, आंगन कुटी छवाय ।
 विन पानी साधुन विना, निर्मल करे सुभाय ॥१३॥
 तिनका कबहुँ न निन्दिये, जो पाँवन तर होय ।
 कबहुँ उडि आंखिन परै, पीर घनेरी होय ॥१४॥
 रुखा सूखा पाइ के, ठंडा पानी पीव ।
 देखि बिरानी चूपडी, मत ललचावो जीव ॥१५॥
 कबीर गर्व न फौजिये, एक न हँसिये कोय ।
 अजहुँ नाव समुद्र में, फया जानै फया होय ॥१६॥
 मांगन मरन समान है, मति कोइ मांगो भीख ।
 मांगन ते मरना भला, यह सत गुरु की सोख ॥१७॥
 आपा तजो और हरि भजो, नख सिख तजो विकार ।
 सब जितते निरबैर रहु, साधु मता है सार ॥१८॥
 गारी ही सौ ऊपजै, कलह कष्ट औ मीच ।
 हारि चलै सो साधु है, लागि मरै सो नीच ॥१९॥

कर्मगति ।

कर्म गति टारे नाहिं टरी ।

मुनि वसिष्ठ से परिडत ज्ञानी सोघ के लगन धरी ॥
 सीता हरन मरन दशरथ को यन में बिपत परी ।
 कहँ वह फद कहाँ वह पारधि कहँ वह मिरग चरी ॥
 सीता को हरि लै गो रावन सुधरन लंक जरी ।
 नीच हाथ हरिचन्द बिकाने बलि पाताल धरी ॥
 कोटि गाय नित पुत्र करत नृग गिरगिट जोनि परी ।
 पाडव जिनके आपु सारथी तिन पर बिपती परी ॥
 दुर्जोधन को गरब धटायो जडकुल नास करी ।

राहु केतु औ भानु चंद्रमा विधि सजोग परी ।

कहत कबीर सुनो भाई साधो होनी होके रही ॥ १ ॥

चलत का टेढ़े टेढ़े टेढ़े ।

दसो द्वार नरकै मैं बूड़े दुरगन्धों के बेटे ॥

फूटे नैन हृदय नहिं सूझै मति एकौ नहिं जानी ।

काम क्रोध तृष्णा के मारे बूडि मुये दिन पानी ॥

जारे देह भसम है जाई गाढे माटी खाइ ।

सूकर खान काग के भोजन तन की अहै बडाई ॥

चेति न देखु मुमुध नर बौरे तोते काल न दूरी ।

कोटिन जतन करै बहुतेरे तन की अग्रस्था धूरी ॥

बालू के घरवा मैं बेटे चेतत नाहिं अयाना ।

कह कबीर एक राम भजे दिन बूड़े बहुत सयाना ॥ २ ॥

मन लागो है मेरो फकीरी मैं ।

जो सुख पायो नाम भजन में, सो सुख नाहिं अमीरी में ।

भला बुरा सबकी सुन लीजे, कर गुजरान गरीबी में ॥

प्रेम नगर में रहनि हमारी, भलि बनि आई सयूरी में ।

हाथ में कूंडी घगल में सोंटा, चारो दिसि जागरी में ॥

आखिर यह तन खाक मिलैगे, कहन फिरत मगरूरी में ।

कहै कबीर सुनो भाई साधो, साहिव मिलै सयूरी में ॥ ३ ॥

रहना नहिं देश विराना है ।

यह संसार कागद की पुडिया बूद पड़े, पुल जाना है ।

यह संसार कांट की बाडी बलभ पुलभ मरि जाना है ॥

यह संसार भाड औ भांगर आग लगे धरि जाना है ।

कहत कबीर सुनो भाई साधो सतगुरु नाम ठिकाना है ॥ ४ ॥

भजु मन जीवन नाम मथेरा ।

सुन्दर देह देस जिन भूलो भपट खेत जस धाज बटेरा ।

या देही को गरव न कीजै उठ पछी जस लेत वसेरा ॥
 या नगरी में रहन न पैहो कोइ रहि जाय न दूख घनेरा ।
 कहै कयीर सुनो भाइ साधो मानुख जनम न पैहो फेर ॥५॥

श्रीमती मीराबाई के भजन ।

धसो मेरे नैनन में नन्दलाल ।

मोहिनी मूरति साँवरि सुरति नैना बने विशाल ।
 अधर सुधारस मुरली राजित उर धैजन्ती माल ॥
 छुद्र घटिका कीट तक सोमित नूपुर शब्द रसाल ।
 मीरा प्रभु सन्तन सुखदाई, भक्तवच्छल गोपाल ॥ १ ॥

पायोजी मैंने राम रतन धन पायो ।

वस्तु श्रमोलक दी मेरे सतगुरु भवसागर तर आयो ॥
 जनम जनम की पूंजी पाई जग में सभी खोवायो ।
 परचे नहि कोइ चोर न लेवे दिन दिन बढ़त सेवायो ॥
 सत की नाव खेवैया सतगुरु भवसागर तर आयो ।
 मीरा के प्रभु गिरिधर नागर हरख हरख जस गायो ॥ २ ॥
 रामनाम रस पीजे मनुश्रौ राम नाम रस पीजे ।
 तज कुसंग सतसंग बैठ नित हरि चरचा गुण लीजे ॥
 काम क्रोध मद लोभ मोह कूँ चित से बहायसु दीजे ।
 मीरा के प्रभु गिरिधर नागर ताहि के रग में भीजे ॥ ३ ॥

भजि मन चरण कमल श्रविनासी ।

जेताई दीस धरनि गगन बिच तेताई उठि सय जासी ।
 कहा भयो तीरथ अत कीने कहा लिप करघत कासी ॥
 इस देही का गरव न करना, माटी में मिलि जासी ।
 यो ससार चहर की बाजी साँझ पड़्या उठ जासी ॥

कहा भयो है भगवाँ पहूँयाँ घर तज भय-सन्यासी ।

जोगी होय, जुगति नहिं जानी उलट जनम-फिर आसी ॥

अरज करौ अवला कर जोरै-स्याम-तुम्हारी दासी ।

मीरा के प्रभु गिरिधर नागर काटो जम की फाँसी ॥ ४ ॥

श्री गुरु नानक जी के पद ।

साधो मन का माने तिआगऊ ।

काम क्रोध संगति दुर्जन की ताते अहनिशि भागऊ ॥

सुख दुख दोनों सम कर जाने आउर मान अपमाना ।

हरष शोक ते रहै अतीता तिन जग तत्त्व पछाना ॥

(अ) स्तुति निन्दा दोउ तिआगे खोजै पद निर्वाणा ।

जन नानक यह खेल कठिन है किन्हु गुरु सुख जाना ॥ १ ॥

साधो रचना राम बनाई ।

इक यिनसे इक अस्थिर मानै अचरज सख्यो न जाई ।

काम क्रोध मोह बस प्राणी हरि मूरति, बिसराई ॥

भूठा तन साँचा कर मानेउ जिउ सुपना रैनाई ।

जा दीसै सो सकल विनासे जिउ-बादर की छाई ॥ २ ॥

जन नानक जग जानिआ-मिथ्या रहियो राम सरनाई ॥ २-॥

नर अचेत पापते डर रे ।

दीन दयाल संकल भय भजन सरन ताहि तुम पर रे ॥

वेद पुरान जासु गुन गावत, तारो नाम हिये, माँ, धर-रे ।

पावन नाम जगतमें हरि, को सिमिर, सिमिर कलिमल सब हर रे ।

मानुस, वेद-बहुरि नहिं, पावै-कलुष, उपाय मुक्ति का कर, रे ।

नानक कहत, गाय करुनामय भवसागर सै पार उतर रे ॥ ३ ॥

काहे रे घन खोजन जाई ।

सर्व निवासी सदा, अलेपा, तोही, संग, समाई ॥ ४ ॥

लटकन लटकत ललित भाल पर, काजर बिंदु भुव ऊपर रो
 यह शोभा नैननि भरि देखैं, नहि उपमा कहूँ भू पर रो
 कण्ठक दोरि घुटन बन लटकत, गिरत परत फिरि धा वतरो
 इत ते ॥ नंद बुलाइ लेत हैं उतते जतनि बुलावति री ॥
 दपति होड करत आपुस में, श्याम खिलौना कीनो री ।
 सुरदास प्रभु ब्रह्म सनातन, सुत हित करि दोड लीनो री ॥ ६ ॥

कृष्ण की कयनी ।

मैया ऊँहें बढेगी चोटी ।

जितो बार मोहि दूध पियत भई यह अजह है छोटी ॥
 सूजो कहति बल की बेनी ज्यों है है लाँची मोटी ।
 काढ़त गुहत नहावत ओछत नागिन सी है लोटी ॥
 काचो दूध पियावत पचि पचि डेत न माखन रोटी ।
 सुर श्याम चिरजीवो दोऊ भैया हरि हलधर की जोटी ॥ १ ॥

खेलन अब मेरी जात बलैया ।

जबहि मोहि देखत लरिकन - सग तबहि खिजत बलभैया ॥
 मोसों कहत तात बसुदेव को देवकी तेरी भैया ।
 मोल लियो कछु दे बसुदेव को करि करि यतन बढैया ॥
 अब दादा कहि कहत नद को यशुमति को कहै भैया ।
 ऐसेहि कहि सब मोहिं खिजावत तब उठि चलो खिसैया ॥
 पाठे नद सुनत हैं ठाढे हंसत हंसत उर लेया ।
 सुर नद बलिरामहि धिरयो सुनि मन हरख कन्हैया ॥ २ ॥

मातु मोहि दाऊ बहुत खिझायो ।

मोमो कहत मोल को लीन्हों तोहि जशुमति कब जायो ।
 कहा कहाँ यहि रिस के भारे खेन हों नहि जात ॥
 पुने पुनि कहत कौन है माता को है तुम्हरो तात ।

गोरे नंद यशोदा गोरी तुम कत श्याम शरीर ।
 छुटकी दे दे हंसत ग्वाल सब सिखी देत बलवीर ॥
 तू मोहि को मारन सीखी दाउहि केचहुँ न सीकै ।
 मोहन को मुख रिस समेत लेखि यशोमति अंति मन रीकै ॥
 सुनहु कान्ह बलभद्र चवाई जनमत ही को धूत ।
 सूर श्याम मो गोधन की सौ हौं माता तू पूत ॥ ३ ॥

ऊधो का सदेश कयन ।

कबहि सुधि करत गोपाल हमारी ।
 पूछत नंद पिता ऊधो सौ अस यमुदा महतारी ॥
 यहुतै चूक परी अनजानत कहा अय के पछिताने ।
 वासुदेव घर भीतर आये मैं अहीर कै जाने ॥
 पहिले गर्ग कह्यो हुतों हम सौ सग देत गयो भूली ।
 सूरदास स्वामी के बिछुरे रात दिवस भै शूली ॥ १ ॥

कह्यो कान्ह सुनु यशुमति मैया ।
 आवहिगे दिन चार पाच में हम हलधर दोड भैया ॥
 मुरली बेट विपाण देखिये शृंगी बेर सबेरो ।
 ले जिनि जाइ घुराइ राधिका कछुक खिलौनों मेरो ॥
 जा दिन ते तुमसे बिछुरे हम कोऊ न कहत कन्हैया ।
 भोरहि नाहि कलेऊ कीनो सांभ न पूय पीयो ना घेया ॥
 कहत न यनै सदेशो मो पै जननि जितो दुख पायो ।
 अय हमसौं, वसुदेव देवकी कहत आपुनो जायो ॥
 कहिये कहा नन्द बाबा सौ बहुत निदुर मन कीनो ।
 सूर हमहि पहुँचाइ मधुपुरी बहुरो सोध न लीनो ॥ २ ॥

मातृ-वत्सलता ।

यशोदा चार चार यों भावै ।

है कोई ब्रज-हितू हमारो चलत गोपालहिं राखै ॥
कहा काज मेरे छगन मगन को नृप मधुपुरी बुलायो ।
सुफलक सुत मेरे प्राण हतन को काल रूप है आयो
घरु ये गोधन हरो फस सब मोहि यदि ले मेलो ।
इतने ही सुख कमल नयन मेरी अंखियन आगे खेलो ॥
धासर चदन बिलोकत जीवों निस निज अंक में लाओ ।
तेहि बिछुरत जो जीवों कर्मवश तौ हँसि काहि बुलाओ ॥
कमल नयन गुण देखत देखत अधर चदन कुम्हिलानो ।
सूर कहा लगि प्रगट जनाऊँ दुखित नव जू की रानी ॥

संदेसो देवकी सो कहियो ॥ १ ॥

हौं तौ धाय तिहारे सुत की मया करत नित रहियो ॥
यद्यपि देव, तुम जानत, उनकी तऊ मोहि कहि आवै ।
प्रातहि उठत तुम्हारे कान्हहि भाखन रोदी भावै ॥
तेल उबड़नो अरु ताते जल ताहि देख भगि जाते ।
जोइ जोई मागत सोइ सोई देती क्रम क्रम करि करि नहाते ॥
सूर पथिक सुनि मोहि रैन दिन बढो रहत उर सोच ।
मेरो अलक लड़ै तो मोहन है है करत सकोच ॥ २ ॥

धनवाला विनय ।

ऊधो अंखिया अति अनुरागी ।

इक टक मग जोवति अरु रोवति भूलेहु पलक न लागी ॥
दिन पावस पावस ऋतु आई देखत हैं विदमान ॥

सूर कह्यो अति निजो लखत हैं अलख निगन बान ॥

सुनि प्रिय सखा श्यामसुन्दर के जानन सकल सुभाइ ।

जैसे मिले सूर, के स्वामी तैसी करहु उपाइ ॥ १ ॥

हमको हरि की कथा सुनाउ । - - -

ये आनी ज्ञान गाथा अलि मथुरा ही लै जाउ ॥ - - -

ये नर नारिन के समुझहिंगी तेरे बचन बनाउ । - -

पा लागो पेसी इन बातनि उनही जाइ रिमाउ ॥

जा शुचि सखा श्यामसुन्दर को अरु जिय अति सतिभाउ

तो बारक आतुर इन नैनन वह मुग्न आनि दिखाउ ।

जो कोउ कोटि करै कैसेहु विधि विद्या व्ययसाउ ॥

तो सुन सूर मीन को जल बिन नाहिन और उपाउ ॥

ग्रज विरह निवेदन ।

कहा लौं कहिये ग्रज की बात ।

सुनहु श्याम तुम बिन उन लोगन जैसे विषस बिहात ॥

गोपी गाइ ग्याल गो सुन वै मलिन बदन कृश गात ।

परम दीन जनु शिशिर हिमाहत अंबुज गत बिन पात ॥

जा कहु आगत देपि दूरते सब पूछति कुशलात ।

चलन न देत प्रेम आतुर उर कर खरनन लपटात ॥

पिक चातक घन बसन न पावहिं बायस घलिहि न खाइ ।

सूर श्याम संदेशन के डर पथिक न उहि भग जात ॥१॥ -

विनय के पद ।

प्रभु मैं सब पतितन को टीकी । - - -

और पतित सब घोस चार के मैं तो जन्मत ही को ॥

बधिक अजामिल गनिका तारी और पूतना ही को ।

मोहि छाडि तुम और उधारे मिटै झूल कैसे जीको ॥

गोस्वामी श्रीतुलसीदास कृत 'रामायण' से ।

प्राप्तिषो का अलौकिक प्रेम ।

जे पुर ग्राम बसहिं मगुमाहों । तिनहिं नाग सुरनगर सिंहाही ।
केहि सुकृती केहि धरी वसाए । धन्य पुन्यमय परम सुहाए ॥
जहं तहं रामचरण चलि जाहीं । तेहि समान अमरावति नाहीं ।
पुण्य पुज मगु निकट निवासी । तिनहिं सराहहिं सुर पुरवासी ॥
जे भरिनयन विलोकहिं रामहिं ।

जेहि सर सरित राम अचगाहहिं । तिनहिं देव सुर सरित सराहहिं ॥
जेहि तरुतर प्रभु बैठहिं जाई । करहिं कल्पतरु तासु बडाई ॥
परसि रामपदपद्म पगगा । मानति भूरिभूरि निज भाया ॥
दो०—छाँह करहिं घन विधुधरण, बरपहिं सुमन सिंहाहिं ॥

वेसत गिरि घन बिहंग नृग, राम चले मगु जाहिं ॥
सीता लपण सहित रघुराई । गाव निकट जब निकसहिं जाई ॥
सुनि सब बाल धृद्ध नरनारी । चलहिं तुरित गृहकाज बिसारी ॥
रामलपन सिय रूप निहारी । पाइ नयन फल होहिं सुखारी ॥
सजल नयनअति पुलकि शरीरा । सब भये मगन देखि दोउ घीरा ॥
घराणि न जाई दशा तिन केरी । लही रंक जनु सुरमनि बेरी ॥
एकहिं एक धौलि सिख देहो । लोचन लोहु लेहु क्षण पही ॥
रामहिं देखि एक अनुरागे । चितवत चले जात संग लागे ॥
एक नयनमगु छवि उर आनी । होहिं शिथिल तनु मानस आनी ॥
दो०—एक देखि बट छाँह भलि, डारि मृदुल दृण पात ॥

कहहिं गवाँइय क्षणिक भ्रम, गवनब अर्चहिं कि प्रात ॥
एक कलश भरि आनहिं पानी । अँचइय नाय ॥ १३५ ॥
सुनि प्रिय वचन प्रीतिअति देखी । राम कृपातु सुशील विशेषी ॥
जानी सीय भ्रमित मनमाहों । घरिक विलंब कीन्ह बटछाहीं ॥

मुदित नारि नर देखाह शोभा । रूप अनूप नयन मन लोभा ॥
 एकटक सब जोहहि त्वहुँ ओहा । रामचन्द्र मुख चन्द्र चकोरा ॥
 तरुण तमाल वरण तनु सोहा । देखत काम कोटि मन मोहा ॥
 दामिनि वरण लपण सुन नीके । नखशिख सुभग भावते जीके ॥
 मुनिपट कटिन्ह कसे तूणीरा । सोहत करक्रमलन धनुतीरा ॥
 दो०—जटा मुकुट शीसनि सुभग, उर भुज नयन पिशाल ।
 सरद परव भा विधु बदन, लसत स्वेदकण जाल ॥
 धरणि न जाई मनोहर जोरी । शोभा अमित मोर मति थोरी ॥
 राम लपण निय सुन्दरताई । सब चितवहि मति मन चित लाई ॥
 धने नारि नर प्रेम पियासे । मनहुँ मृगी मृग देखि दियासे ॥
 सीय समीप प्राप्त निय जाहों । पूछत अति सनेह सकुचाहों ॥
 धार धार सब भागहि पाय । कहहि वचन मृदु सरल गुहाय ॥
 राज कुमारि चिनय हम कहों । हिय सुभाव कछु पूछत डरहों ॥
 स्वामिनि अतिनय उमच हमारी । बिलगु न मानन जानि गंवारी ॥
 राज कुमार दोउ सहज सलाने । इनहों लहि दुति मरकत सोने ॥
 दो०—श्यामल गौर किशोर घर, सुन्दर सुखमा पैन ।
 शरद शर्वरी नाथ मुख, शरद सरोवर नैन ॥
 कोटि मनोज लजावनिहारे । सुमुखि कहहु को अहहि तुम्हारे ॥
 सुनि सनेह मय मजुल बानी । सकुचि सीय मन महँ सुखकानी ॥
 तिनहि बिलोकि बिनोकेंउ धरणी । दुहुँ सकोच सकुचति वरवरणी ॥
 सकुचि स्प्रेम बाल मृगनयनी । बोली मधुर वचन पिक धयनी ॥
 सहज सुभाव सुभग तने गोरे । नाम लपण राघु देवर मोरे ॥
 श्यामवर्ण आयत भुज नैन । अनि सुन्दर योरात मृदु पैना ॥
 बहुरि वदन विधु अंचल ढाँकी । पियतन चितै भाँहि फरि चाँकी ॥
 खंजन महु तिरीङ्गे नयननि । निजपनिकहेउतिनहिसियसयननि ॥
 भई मुदित मय ग्राम बूटी । रंकन्ह रतन राशि जनु लूटी ॥

दो०—अति सप्रेम सिय पाय। धरि, बहु विधि देहिं अशीस ।

सदा सोहागिनि रहहु तुम, जब लगि महि अहि शीस ॥

पारवती सम पति प्रिय होहु । देवि न हम पर छाडै छोह ॥

पुनि २ विनय करहि करजोरी । जौ इहि मारग फिरिय बहोरी ॥

दरशन देव जानि निज दासी । लखी सोय सब प्रेम पियासी ॥

मधुर वचन कहि कहि परितोपी । जनु कुमुदिनी कौमुदी पोपी ॥

तबहि लखण रघुर रूपा जानी । पूछे मगु लोगनि मृदुवानी ॥

सुनत नारि नर भय दुखारी । पुलकित अग बिलोचन बारी ॥

मिटा मोह मन भय मलीने । विधि निधि दीन्ह तेत जनु छीने ॥

समुझि कर्मगति धीरज कीन्हा । शोयि सुगम मगु तिन्ह कहि दीन्हा ॥

दो०—लखण जानकी सहित, तब, गमन कीन्ह रघुनाथ ॥

फेरे सब प्रिय वचन कहि, लिप लाय मन साथ ॥

फिरत नारि नर अति पछताहीं । देवहि दोष देहि मन माहीं ॥

सहित त्रिपाद परस्पर, कहहीं । विधि करतव सब उलटे अहहीं ॥

निपट निरकुश निदुर निशंकु । जेहि शशिकीन्ह सरज सकलकु ॥

रुख कल्पतरु सागर सारा । तेहि पठये बन राजकुमार ॥

जा पे, इनहि दीन्ह बनवास । कोन्ह यादि जे लोग बिलास ॥

ये विचरहि मगु जिनु पदजाना । रचे वादि विधि बाहन नाना ॥

ये महि परहि डालि कुश पाना । सुभग सेज कत कीन्ह विधाता ॥

तरुतर घाल इनहि विधि दीन्हा । धवल धाम रचि कत अम कीन्ह ॥

दो०—जो ये मुनिपट घर जटिल, सुंदर सुठि सुकुमार ॥

विविध भांति भूषण वसन, वादि किये करतार ॥

जो ये कण्ठ भूल फल खाहीं । वादि सुधादि अशन जगमाह ॥

परु कहनि यह सहज सुहाये । आपु प्रकट भे विधि न ता ॥

जह लगि वेद कहहि विधि करणी । अवल नयन मन गोचर बर ॥

—ये धनन दशचारी । कहि अस पुरुष कहा असि ना ॥

इन्हि देखि, मिथि मन-अनुरागा । पदतर योग बनावन, लागा ॥
 कीन्ह बहुत श्रम, एक न आये । तेहि इर्षा बन आनि दुराय ॥
 एक कहहि हम, बहुत न जानहि । आपुहि परम धन्य करि मानहि ॥
 ते पुनि पुण्य-पुञ्ज हम लेये । जे देखहि देखिहैं जिन देखे ॥
 दो०—इहि विधि कहि कहि घचन प्रिय, मोहि नयन भरि नीर ।
 किमि चलिहैं भारग, अगम, सुठि सुकुमार शरीर ॥
 नारि सनेह यिकल सब होही । चरई साभ समय जिमि सोही ॥
 मृदु पद कमल कठिन मग जानी । गहयारि हृदय कहहि मृदुयानी ॥
 परसत मृदुल चरण अरुणारे । सफुचित महि जिमि हृदय हमारे ॥
 जो जगदीश, इन्हि बन दीन्हा । कस न सुमनमय मारग कीन्हा ॥
 जो मार्गे पाह्य विधि पाही । राखिय सखि इन आखिन माही ॥
 जे नर नारि न अवसर आये । तें सिय राम न देखन पाये ॥
 सुनि स्वरूप पूछहि अकुलाई । अथ लगि गये कहा लगि भाई ॥
 समर्थ धाइ मिलोकहि जाई । प्रमुदित फिरहि जन्म फल पाई ॥
 दो०—अबला बालक बृद्धजन, कर मीजहि पछितोहि ।
 होहि प्रेमवेश लोग इमि, राम जहां जह जाहि ॥
 गाँव गाँव असें होहि अनन्दा । देखि भानुकुल कैरव चन्दा ॥
 जे कतु समोचार सुनि पावहि । ते नृप रानिहि दाप लगावहि ॥
 कहहि एक अति भल नरनाह । दीन्ह हमहि जिन लोचन लाह ॥
 कहहि परस्पर लोग लुगाई । यातें सरल सनेह सुहाई ॥
 ते पितु मातु धन्य जिन जाये । धन्य सो नगर जहा ते आये ॥
 धन्य सो गैत देख बने गाऊं । जह जह जाहि धन्य सो ठाऊं ॥
 सुख पायो निरञ्जि रचि तेही । ये जेहिके सब भाँति सनेही ॥
 राम लपण सिय कथा सुहाई । रही सकल मग कानन छाई ॥
 दो०—इहि मिथि गधुकुल कमल रति, मग लोगन सुख देत ।
 जाहि चले देखत विपिन, सिय सौमित्रि समेत ॥

आगे राम लपण पुनि पाउं । तापस विष विराजंत आछे ॥
 उभय मध्य सिय शोभति कैसी । ब्रह्म जीव विच माया जैसी ॥
 बहुरि कहौ छवि जस मन वसई । जनु मधु मदन मध्य गति लसई ॥
 उपमा बहुरि कहौ जिय जोही । जनु बुध विधु विच रोहिणी सोही ॥
 प्रभुपद देख बीच विच सीता । धरहि चरण मग चलत समीता ॥
 सीय रामपद अङ्क चराये । लपण चलहि मग दाहिन बाये ॥
 राम लपण सिय प्रीति सुहाई । चचन अगोचर किमि कहि जाई ॥
 जग मृग मगन देखि छवि होही । लिये चोरि चित राम बंदोही ॥
 दो०-जिन्ह जिन्ह देखे पयिक प्रिय, सीय सहित दोउ भाई ।
 भव मग अगम अनन्द ते, विनु श्रम रहे सिराइ ॥

भरत की आतृभक्ति ।
 दो०-राम शपथ सुनि मुनि जनक, सकुच-समा समेत ।
 सकल विलोकहि भरत मुख, वनै न उत्तर देत ॥
 समा सकुचयश भरत निहारी । रामबन्धु धरि धीरज भारी ॥
 कुसमय देख सनेह सभारा । बद्ध विन्ध्य जिमि घटज निबारा ॥
 शोक कनक लोचन मति क्षोणी । हरी विमल गुणगण जग जोनी ॥
 भरत विवेक बराह विशाला । अनायास उधरे तेहि काला ॥
 करि प्रणाम सय कह करजोरी । राम राउ गुर साधु निहोरी ॥
 क्षमव आनु अति अनुचित मोरा । कहहु वचन मृदु वचन कठोरा ॥
 हिय सुमिरी शारदा सुहाई । मान सने मुख पकज आई ॥
 विमल विवेक धर्मनय साली । भरत भारती मजु मराली ॥
 दो०-निरखि विवेक विमोचनहि, शिथिल सनेह समाज ।
 करि प्रणाम बोले भरत, सुमिरि सीय रघुराज ॥
 प्रभु पितु मातु सुहृद गुरु स्वामी । पूज्य परमहित अन्तर्गामी ॥
 सखा सुसाहित्य शील निधाना । प्रखेत पाल सयश सुजाना ॥

समर्थ शरणागते हितकारी । गुण ग्राहक अवगुण अधकारी ॥
 स्वामि गुसाईहि सदृश गुसाई । माहि समान मैं स्वामि दोहाई ॥
 पुंभु पितु चचन मोर चश पेली । आयउ इहां समाज सकेली ॥
 जगमल पांच ऊंच अरु नीचू । अमी अमर पद माहुर मीचू ॥
 राम रजाई मेदि मन माहीं । देखा सुना कतहुं कोउ नाहीं ॥
 सो मैं सब विधि कीन्ह दिठाई । पुंभु मानी सनेह सेवकाई ॥
 दोहा०—रूपा मलाई आपनी, नाथ कीन्ह भल मोर ।
 रूपण भै भूपण सरिस, सुयश चारु चहुं ओर ॥
 राउर रीति सुवाणि बडाई । जगत विदित निगमागम गाई ॥
 कूर कुटिल बल कुमति कळकी । नाच निशीथ निरीश निशकी ॥
 तैउ सुनि शरण सामुह आये । सुकृत पूनाम किये अपनार्य ॥
 देखि दोष कबहुं न उर आने । सुनि गुण साधु समाज घराने ॥
 का साटेय सेवकहि नेजाजी । आपु समान साज सब साजी ॥
 निज करतूति न समुभिय सपने । सेवक सकुच शोच उर अपने ॥
 सो गुसाई नहि दूसर कोपी । भुजा उठाई कहाँ पूण रोपी ॥
 पशु नाचत शुक पाठ पूर्वाणा । गुणगति नट पाठक आधीना ॥
 दोहा०—सो सुधारि सन्मानि जन, किये साधु शिर मोर ।
 १ को रूपालु बिनु पालिहें, बिरदावलि घर जोर ॥
 शोक सनेह कि चाल स्वभाये । आयसु लाइ रजायसु पाये ॥
 तबहुं रूपालु हेरि निज ओर । सबहि भाति मल मानेहुं मोर ॥
 देखेउ पाई । सुमंगल मूला । जानेउ स्वामि सहज अनुकला ॥
 धडे समाज विलोकेउ भागू । बडो चूक साहिव अनुरागू ॥
 रूपा अनुग्रह अबु अघाई । कीन्ह रूपानिधि सब अधिकारी ॥
 राखा मोर दुलार गुसाई । अपने शील स्वभाव मलाई ॥
 नाथ निपट मैं कीन्ह दिठाई । स्वामि समाज सकोच विहाई ॥
 अविनय विनय यथारचिबानी । क्षमिय देव अति आरति जानी ॥

दोहा—सुहृद् सुजान सुसाहिवहि, बहुत कहव बडि खोरि ।
 आयसु देइय देव अरव, सबइ सुधारिय मोरि ॥
 प्रभु पद पदुम पराग दोहाई । सत्य सुकृत सुख सीव सुहाई ॥
 सो करि कहउ हिये अपने की । रुचि जागत, सोवत सपने, की ॥
 सहज सनेह स्वामि, सेवकाई । स्वारथ छल, फल चारि, बिहाई ॥
 आशा सम न सुसाहिव, सेवा । सो प्रसाद जन, पावइ देवा ॥
 अस कहि प्रेम-विषय भय भारी । पुलक शरीर बिलोचन बारी ॥
 प्रभु पद कमल गहे अकुलाई । समय सनेह न सो कहि जाई ॥
 कृपासिन्धु सनमानि सुबानी । बैठाये समीप गहि पानी ॥
 भरत विनय सुनि देखि सुभाऊ । सिथिल सनेह समा, रघुराऊ ॥
 छ०—रघुराऊ सिथिल सनेह साधु समाज मुनि, मिथिलाधनी ॥
 मनमहं सराहन भरत भायप भगति की महिमा धनी ॥
 भरतहि प्रसंसत विबुध वरुणत सुमन मानस मलिन से ॥
 तुलसी विफल सब लोग सुनि सकुचे निशागम नलिन से ॥
 सो०—देख दुखारी दीन, दुहुँ समाज नर नारि, सब ।
 मधवा, महा मलीन, मुये मारि मैं गल चहत ॥

वर्षा और शरद वर्णन

दोहा—लछिमन देखहु मोर गण, नाचत गारिद पैखि ।
 गृही विरति रत हर्ष जस, विष्णु भक्त कहै देवि ॥
 घन मंडल नभ गज्जत घोरा । प्रियाहीन हरपत मन मोरा ॥
 दामिनि दमकि रही घन माहीं । खल कै प्रीति यथा धिर नाहीं ॥
 घरसहि जलद भूमि नियराये । यथा नवहि बुध बिद्या पाये ॥
 घुद अघात सहै गिरि कैसे । खल के वचन सत सह जेमे ॥
 क्षुद्र नदी भरि चली इतराई । जस थोरहि घन खल घौराई ॥
 भूमि परत भा दावर पानी । जिमि जीवहि माया लपटानी ॥
 सिमिट सिमिट जल भरहि तलावा । जिमि सद्गुण सज्जन पद आवा ॥

सरिता जल जलनिधि महँ जाई । होहि अचल जिमि जनु हरि पाई ॥
 दोरा-ररित भूमि तृण सकुलित, समुझ परै नहि पथ । ॥
 जिमि पाखड़ विवादते, गुप्त होहि-रुद्रग्रथ ॥
 दादुर-धुनि चहुँ दिशा सोहाई । वेद-पढ़े-जनु बटु समुदाई ॥
 नय पुल्लय भये, घिटप अनेका । साधक मन जस मिले विवेका ॥
 अक जवास पान-चिनु भयऊ । जस सुराज खल उद्यम-गयऊ ॥
 खोजत फतहुँ-मिलै-नहि धूरी । करै क्रोध जिमि धर्महि दूरी ॥
 ससि सम्पन्न सोह-महि कैसी । उपकारी-कै-सम्पति जैसी ॥
 निशि त्रम घन खद्योत चिराजा । जनु दम्भिन कर मिला समाजा ॥
 महावृष्टि चलि फटि कियारी । जिमि स्वतन्त्र होइ विगारहि नारी ॥
 कृपी निरावहि चतुरद किसाना । जिमि बुधतजहि मोह मद माना ॥
 देखियत चक्रवाक रंग नाहीं । कलिहि पाइ जिमि धर्म पराहीं ॥
 ऊसर बरसै-तृण नहि जामा । जिमि हरिजन उर उपजन कामा ॥
 विविध जनु सकुल महि भ्राजा । प्रजा थाढ़ जिमि पाइ सुराजा ॥
 जहँ तहँ रहे पथिक थक नाना । जिमि इन्द्रिय गण उपजै नाना ॥
 दोहा-कबहुँ प्रयल चल मारुत, जहँ तहँ मेघ बिलाहि ।
 जिमि फपत पुल ऊपजै, सम्पति धर्म नशाहि ॥
 कबहुँ दिवस महँ निविड तम, कबहुँक प्रगट पतंग । ॥
 उपजै चिनसई शानि जिमि, पाय-कुसंग सुसंग ॥
 वर्षा विगते सरद ऋतु आई । सछिमन देराहु परम सुहाई ॥
 फूले कास सकल महि छाई । जनु वर्षा हत प्रगट बुदाई ॥
 उदित अगस्त पथ जल शोषा । जिमि सोभहि शोषे सन्तोषा ॥
 सरिता सर निर्मल जल सोहा । सत हृदय जस गत मदमोहा ॥
 रस रम्य सुख मरित सर पानी । ममता त्याग परहि जिमि हानी ॥
 जानि शरद-ऋतु रज्जुन आये । पाइ समय जिमि सुरत सुहाये ॥
 एक न रेनु सोह-अस धरनी । नीति निपुण नृपकी जस करनी ॥

जल संकोच विकल भये मीना । अमुध कुटुम्बी जनु धन हीना ॥
 विनु धन निर्मल सोह अकाशा । हरिजन इव परिहरि सब आशा ॥
 कहूँ २ वृष्टि शारदी योरी । कोउ एक पाव भक्ति जिमि मोरी ॥
 दोहा—चले हर्ष । तजि नगर नृप, तापस वणिक भिखारि ।

जिमि हरि भक्ति पाइ श्रम, तजहि आश्रमी चारि ॥
 सुखी मीन जहूँ नीर अगाधा । जिमि हरि शरण न एकी बाधा ॥
 फुले कमल सोह सर कैसे । निर्गुण ब्रह्म संगुण भये जैसे ॥
 गुजत मधुकर मुखर अनूपा । सुन्दर सगरब नाना रूपा ॥
 चक्रवर्क मन दुख निशि पेखी । जिमि दुजन परसम्पति देखी ॥
 घातक रटत तृपा अति ओही । जिमि सुख लेहहि न शंकर द्रोही ॥
 शरदातपे निशि शशि अपहरई । संत दरश जिमि पातक टरई ॥
 देखि इन्दु चकार समुदाई । चितवहि जिमि हरि जन हरि पारि ॥
 मशक दश घीन हिम ब्रासा । जिमि द्विज मोह किये कुलनासा ॥
 दोहा—भूमि जीव सकुल रहे, गये शरद अतु पाय ।

सद्गुरु मीले जाहि जिमि, सशय भ्रम समुदाय ॥

संत असंत लक्षण ।

सत । असन्त । भेद-विलगाई । प्रणतपाल मोहि कहहु बुझाई ॥
 सन्तन के लक्षण सुनु आता । अगणित श्रुतिपुराण विख्याता ॥
 सन्त असन्तन के अस करनी । जिमि कुठार चंदन आचरणी ॥
 काटे परशु मलय सुनु भारी । निज गुण देय सुगंध बसाई ॥
 दोहा—ताते सुर शीशन्ह चढत, जग घल्लम श्रीखंड ।
 अतल दाहि पीटत घनहि परशु वदन यह दंड ॥

धिष्य अलम्पट शील गुण कारि । पर दुख दुख सेखे सुख देखे पर ॥
 सन अभूत रिपु विमद विरागी । लोमामर्ष हर्ष भय रोगी ॥
 कोमल चित दीनने प्रेरे दायी । मन यच प्रमम भक्ति अमायी ।

सबहि मानप्रद आपु अमानी । भरत प्राण सम मन ते प्रानी ॥
 विगत काममम नाम परायण । शाति विरति प्रिनती मुदितायन ॥
 शीतलता सरलता मझी । द्विज पद प्रीति धर्म जनयित्री ॥
 ये सब लक्षण बसहि जामुउर । जानहु तात संत सतत फुर ॥
 समदमनियमनीतिनिहिडालहि । परुषवचन कवहु नहि धोलहि ॥
 दोहा--निन्दा अस्तुति उभय सम, नमता मम पद कज ।
 ते सज्जन मम प्राण प्रिय, गुण मदिर सुज पुज ॥
 सुनहु असतन केर सुभाऊ । भूलेहु सगति करिय न काऊ ॥
 तिन्ह कर सग सदा दुखदाई । जिमि कपिलहि घालै हरहाई ॥
 खलहृदय अतिताप प्रिये । जरहि सदा पर सम्पति देखी ॥
 कहँ जहु निन्दा सुनहि पराई । हर्षहि मनहु परी निधि पाई ॥
 काम क्रोध मद लोभ परायन । निर्दय कपटी कुटिल मलायन ॥
 धैर अकारण सब काहू सौ । जो कर हित अनहित ताहू सौ ॥
 झूठइ लेना झूठइ देना । झूठइ भोजन झूठ चबेना ॥
 घालहि वचन मधुर जिमि मोरा । खाहि महा अहि हृदय फोरा ॥
 दोहा--पर द्रोही पर दार रत, परधन पर अपवाद ।
 ते नर पाँउर पाँउ मय, देह धरे मनुयाद ॥
 लोभइ आदन लोभइ डासन । शिशोदर पर यमपुर घासन ॥
 काहू कै जो सुनहि घडाई । भ्वास लेहि जनु जूडी आई ॥
 जय काहू कै देखहि प्रियी । सुखी भये मानहुँ जग नृपति ॥
 खारय रन परिहार प्रिये । लंपट काम लोभ अति क्रोधी ॥
 मातु पिता गुरु मित्र न मानहि । आपु गये अर घालहि आनहि ॥
 करहि माह चश द्रोह परात्र । सत सग हरि कथा न भावा ॥
 अवगुण सिंधु मद अति-कामी । वेद विदूषक, परधन स्वामी ॥
 विप्र द्रोह गुर विमुक्त विरोधा । दम कपट जिय धरे सुवेपा ॥

दोहा--पैसे अधम, मनुज खल, कृत युग त्रेता नाहिं ।
 द्वापर, कल्युग वृन्द बडु, होइहैं कलियुग माहि ॥
 परहित सरिस बर्म नहिं भाई । परपीडा सम नहिं अधमाई ॥
 निणय सरल पुराण वेद कर । फहेउँ तात जानहिं कोविद नर ॥
 नर शरीर धरि जे पर पीरा । करहिं ते सहहि महा भव भीरा ॥
 करहिं मोह वश नर अध, नाना । स्वार्थ वश परलोक नसाना ॥
 काल रूप तिन्ह कहैं में ज्ञाता । शम अरु अशुभ कर्म फल दाता ॥
 अस विचारि जे परम सयाने । भजहि मोहिं ससृति दुख जाने ॥
 त्यागहिं कर्म शुभाशुभ दायक । भजहिं मोहिं सुर नर मुनि नायक ॥
 सत असतन के गुण भाखे । ते न परहिं भव जिन्ह लपराखे ॥

गोस्वामी श्री तुलसीदास कृत ग्रन्थावली ।

कवितावली रामायण से
 अवधेश के द्वारे सेकारे गई, सुत गोद के भूपति है निकसे ।
 अवलोकिहीं सोच-विमोचनको, ठगि सी रही जे न ठगे धिकसे ॥
 तुलसी मन रजन, रजित अजन, जैन सुखंजन जातक से ।
 सजनी ससि में सम सील उमै, नव नील सरोरुह से विकसे ॥
 पग नूपुर की पहुँची कर कजनी, मञ्जु बनी मणिमाल हिये ।
 नव नील कलेवर पीत भंगा, भलकै पलकै नृप गोद लिये ॥
 अरविन्द सौ आनन रूप मरन्द, अनन्दित लोचन भृङ्ग पिये ।
 मन में नवस्यो अस बालक जो, तुलसी जग में फल कौन जिये ॥
 तन की दुति स्याम सरोरुह लोचन, कज की मज्जुलताई हरै ।
 अति सुन्दर सोहित धुरि भरे, छवि भूरि अनंग की दूर धरै ॥
 दमकै दैतियाँ दुति दामिनि ज्यौ, किलकै कल बाल विनोद करै ।
 अवधेश के बालक चारि सदा, तुलसी मन मन्दिर में विहरै ॥

कवहुँ शशि मागत आरि करे, कवहुँ प्रतिग्रिम्ब निहारि डरै ।
 कवहुँ करताल बजाइ केनाचत, मातु सवै मर्न मोद भरै ॥
 कवहुँ रिसि प्राइ कहै हठिकै पुनि लेत सोई जेहि लागि अरै ।
 अग्रधेश के बालक चारि दशा, तुलसी मर्न मन्दिर में विहरै ॥
 धर दन की पगति कुद कली, अधराधर पल्लव खोलन की ॥
 चपला त्वमकै छन बीच जुगे, छवि मोतिन माल अमोलन की ॥
 घुघुरारि लटै लटै, मुख ऊपर, कुटल लोल कपोलन की ।
 नैवछावर प्राण ऊरै तुलसी, बलि जाऊँ लला इन धोलन की ॥
 पदकञ्जनि मञ्जु बनी पनहीं, धनुर्ही सर पकज पाणि लिये ।
 लरिका सग खेलत डोलन है, सरयूतट चौट्ट हाट दिये ॥
 तुलसी अस बालक सो नहि नैह, कहा जपयोग समाधि किये ।
 नर नै पर शूकर श्वान समान, कहा जग में फल कौन जिये ॥

‘विनय पत्रिका’ मे ।

ऐसे राम दीन हितकारी ।

॥ अति होमल करी निगनि प्रियु कारन पर उपकारी ॥
 ॥ सोधन हीन दीन निज अप्रस रिला भई मुनि नारी ॥
 ॥ गृहे ते गगनि परसि पद पावन घोर साप ते टारी ॥
 ॥ हिसागत निप्राद तामन वपु परु समान बने चारी ॥
 ॥ भेंटयो हृदय लगाइ प्रेम बस नहि कुल जात विचारी ॥
 ॥ बचपि द्राह कियो मुरपनि सुत करि न जाई अति भारी ॥
 ॥ सफल लोक अलोकि सोकि हत सरन गये भय टारी ॥
 ॥ जिहंग योनि आभिषं अहार पर जीव कौन बतधारी ॥
 ॥ जनक समान कियो नाकी निज करे सब भोति सवारी ॥
 ॥ अधम जाति सवरी सोपित जड लोक वेद ते न्यारी ॥
 ॥ जानि प्रीति दे दरस कृपानिधि सोड रघुनाथ उधारी ॥

- परसुख सम्पति देखि सुख, जरहि जे जड़ बिनु आगि ।
 १ तुलसी तिनके भागते, चले भलाई आगि ॥ ६ ॥
 कौरव पाण्डव जानिये, क्रोध क्षमा के सीम ।
 पांचहि मारि न सौ सके, सबो संहारे भीम ॥ ७ ॥
 रोप न रसना खोलिये, धरु खोलिये तरवारि ।
 २ सुनते मधुर परिणाम हित, बोलिय बचन बिचारि ॥ ८ ॥
 ३ तुलसी सत कहै ते ।
 ४ तुलसी सन्तन ते सुनै, सन्तन इहै ॥ विचार ॥
 ५ तन धन चञ्चल अचल जग, युग युग परे उपकार ॥ १ ॥
 ६ उरग उरग नारी नृपति, नर नीच इधियार ।
 ७ तुलसी परत रह्यो नित, इन्हि न पलटत बार ॥ २ ॥
 ८ नीच निचाई जहि तजै, जो पावत सतसई ।
 ९ तुलसी चन्दन बिटप बसि, विन विषय न भुजङ्ग ॥ ३ ॥
 १० दुरजन दरपण सम सदा, फरि देखो हिय दार ।
 ११ सन्मुख की गति और है, विमुख भये कुछ और ॥ ४ ॥
 १२ मित्रके अवगुण मित्रकी, पर यह आपत नाहि ।
 १३ कूप छाह जिमि आपनी, राखत आपदि माहि ॥ ५ ॥
 १४ तुलसी सो समर्थ सुमति, सुकृती साधु सुजान ।
 १५ जो विचारि व्यर्थ हरत जग, सरच लाम अनुमान ॥ ६ ॥
 १६ तुलसी खल वाणी विमल, सुनि समुच्च हिय हेरि ।
 १७ राम राज चाधक भई, मन्द मन्थरा चेरि ॥ ७ ॥
 १८ तुलसी साथी विपति के, विद्या विनय विवेक ।
 १९ साहब सुकृ मन्थ वत, राम भरोमो एक ॥ ८ ॥

श्री दादूदयाल के भजन और साखियाँ ।

मन रे राम बिना तन छीजइ ।

जब यह जरि मिलजाइ माटी में तब कहु कइसहि कीजइ ।
 पारस परस कंचन कर लीजइ सहज सुरत सुपदाई ॥
 माया बेलि विषै फल लागे तापर भूलु न भाई ॥
 जब लगि प्राण पिण्ड है नीका तब लगि तू जिनि भूलइ ।
 यह ससार सेमर के सुख ज्यों तापर तू जनि फूलइ ॥
 ओरउ यही जानि जग जीवन समझ देखि सच पाउइ ।
 अंग अनेक आन मति भूलइ दादू जिनि डहुँकायइ ॥ १ ॥
 पेसा राम हमारे आवे । वार पार कोइ अत न पावे ॥
 हलका भारी कहा न जाइ । मोल भाव नहिं रह्यो समाइ ॥
 कीमति लेखा नहिं परिमाणा । सब पचि हारे साधु सुजाणा ॥
 आगौ पीछी परिमित नाहीं । फेते पारिख आवहिं जाहीं ॥
 आदि अत मधि लखे न कोइ । दादू देखे अचिरज होइ ॥

होहे ।

बहु रूपी मन तब लगे, जग लग माया रग ।
 जब मन लाग्या राम सू, तब दादू के अग ॥ १ ॥
 ध्यान धरे फया होत हे, जो मन मेल न जाय ।
 ध्यान धारि यर मोन जिम, पशू विचारे खाय ॥ २ ॥
 जे पहले सदगुरु कहा, नेनहु देख्या आइ ।
 अरस परस उस परसू, दादू रह्या समाइ ॥ ३ ॥
 दादू दीया हे भला, दिया करो सब कोय ।
 घर में घस्या न पाइये, जो कर दिया न हाय ॥ ४ ॥
 सुख का माथी जगत सब, दुख का नाहीं कोइ ।
 दुख का माथी साइयाँ, दादू सतगुरु होइ ॥ ५ ॥

- परसुज सम्पति देखि सुख, जराहि जे जेड विनु आगि ।
 तुलसी तिनके भागते, चले भलाई भागि ॥ ६ ॥
 कौरव पाण्डव जानिये, कोध क्षमा के सीम ।
 पांचहि मारि न सौ सके, सबो संहारे भीम ॥ ७ ॥
 रोष न रसना खोलिये, यह खोलिय तरवारि ।
 सुनेतें मधुर परिणाम हित, खोलिय चंचन विचारि ॥ ८ ॥
 तुलसी सुत कहै से ।
 तुलसी सन्तन ते सुनै, सन्तन यहै विचार ।
 तन धन अञ्जल अचल जग, युग युग परी उपकार ॥ १ ॥
 उरग उरग नारी नृपति, जरा नीच हथियार ।
 तुलसी परपत रहवी नित, इनहि न पलटत बार ॥ २ ॥
 नीच निचाई नहि तजै, जो पावत सतसई ।
 तुलसी चन्दन बिटप वसि, दिन त्रिप मीय न भुजङ्ग ॥ ३ ॥
 दुरजन दरपण सम सदा, फरि देखो हिय दीर ।
 सन्मुख की गति और है, विमुख भये कुछ और ॥ ४ ॥
 मित्रक अवगुण मित्र कौ, पर यह भापत नाहि ।
 कूप छांह जिमि आपनी, राखत आपदि माहि ॥ ५ ॥
 तुलसी सा समर्य सुमति, सुकृती साधु सुजान ।
 जो विचारि व्यवहरत जगे, सरच लाम अनुमान ॥ ६ ॥
 तुलसी रत्न वाणी विमल, सुनि समुल्लस हिय हेरि ।
 राम राज बाधक भई, मन्द मन्थरा चरि ॥ ७ ॥
 तुलसी साश्री विपति के, विद्या विनय विवेक ।
 साहित्य सुकृत सत्य बत, राम भरोसो एक ॥ ८ ॥

जा दिन तें वह नन्द को छोहरो या चन धेनु चराइ गयो है ।
मीठि ही ताननि गोधन गावत वेन बजाइ रिभाइ गयो है ॥
चा दिन सों घुछ टोना सों कै रसखानि हिये में ममाइ गयो है ।
काउ न काहु की कानि करै सिगरो ब्रजवीर बिकाइ गयो है ॥७॥
मकराकृत कुण्डल गुञ्ज की माल वे लाल लसैं पग पाँवरियाँ ।
बछरानि चरावन के मिस भावतो दै गयो भावती भावरियाँ ॥
रसखानि त्रिलोकत ही सिगरो भई वावरियाँ ब्रज डावरियाँ ।
सजनि इहि गोकुल मै विप सों गरायो है नन्द के साँवरियाँ ॥८॥
प्राण वही जु रहै रिभि वापर रूप वही जिहि वाहि रिभायो ।
सीस वही जिन वे परसे पद अक वही जिन वा परसायो ॥
दूध वही जु दुहायो री वाहि वही सु सही जो वही ढरकायो ।
और कहालीं कहाँ रसखानि रो भाववही जु वही मन भायो ॥९॥
कञ्चन मन्दिर ऊँचे बनाइ कै मानिक लाइ सदा भलकैयत ।
प्रात ही ते सगरी नगरी गजमोतिन ही की तुलानि तुलैयत ॥
यद्यपि दीन प्रजान प्रजा तिन की प्रभुता मघरा ललचैयत ।
पेसे भये तो कहा रसखानि जो साँजरे ग्याल सो नेह न लेयत ॥१०॥
द्रौपदी कौ गनिका गजगीध अजामिल सों कियो सोन निहारो ।
गौतम-गेहिनी कैसी तरी प्रहाद को कैसे हस्यो दुख भारो ॥
काहै को साँच करै रसखानि कहा करि हैं रघिनन्द बिचारो ।
ताखन जाखन राखिये माखन चाखन हारो सो राखन हारो ॥११॥
देस चिदेस के देखे नरेमन रीभि की कोउ न बूझ करैगो ।
नातों तिन्हें तजि जान गिरयो गुन सो गुन औ गुन गाँठि परैगो ॥
वाँसुरीवारो बडो रिभजार है स्याम जो नैकु सुठार ढरैगो ।
लाडला छैल वही तौ अहीर को पीर हमारे हिये की हरैगो ॥१२॥

सुजान रसखानि के सवैये ।

मानुस हों तो वही रसखानि बसों ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन ।
 जो पशु हों तो कहा बसु मरो चरो नित नन्द की धेनु मँभारन ॥
 पाहन हों तो वही गिरि को जो भयो ब्रज छत्र पुरन्दर कारन ।
 जो पग हों तो बसेरो करों उन कालिन्दो कूल कदम्ब के डारन ॥१॥
 या लकुटी अरु कामरिया पर राज तिहुँ पुर को तजि डारों ।
 आठों सिद्धि नवौ निधि को सुख नन्द की गाइ चराय बिसारों ॥
 कोटि करों कलधौत के धाम करील के कुञ्जन ऊपर वारों ।
 रसखानि कहै इन आंगिन सो ब्रज के बन बाग तडाग निहारों ॥२॥
 गावें गुनी गनिका गन्धर्व और सारद सेस सवै गुन गावत ।
 नाम अनन्त गनत गनेस ज्यों ब्रह्मा त्रिलोचन पार न पावत ॥
 जोगी जती तपसी अरु सिद्ध निरन्तर जाहि समाधि लगावत ।
 ताहि अहीर की छोकरिया छलिया भरि छाछ पै नाच नचावत ॥३॥
 सेस गनेस महेस दिनेस सुरेस ह जाहि निरन्तर गावें ।
 जाहि अनादि अनन्त अखण्ड अछेद अभेद सुवेद बतावें ॥
 नारद से सुक व्यास रहैं पचि हारे तऊ पुनि पार न पावें ।
 ताहि अहीर की छोहरिया छलिया भरि छाछ पै नाच नचावें ॥४॥
 बेन वही उनको गुन गाइ औ कान वही उन बेन सो सानी ।
 हाथ वही उन जात सरै, अरु पाड वही जो वही अनुजानी ॥
 जान वही उन प्रान के सग औ मान वही जो करे मनमानी ।
 त्यों रसखानि वही रसखानि जु है रसखानि मोहै रसखानी ॥५॥
 दोउ कानन कुण्डल मौरपखा सिर सोहै दुकूल नयो चटको ।
 मनि द्वार गरे सुकुमार धरे नट भेस अरे पिय को टटको ॥
 सुम काछनी बेजनी पैजनी पामन आमन में न लगे भटको ।
 वह सुंदर को रसखान अली जु गलीन में आइ अवे अँटको ॥६॥

गई भूमि फिर मिले, बेलि फिर जमै जरते, -
 फल फूलन तें फले, फूल फूलंत भरे ते,
 केसव विद्या निकट, विकट विमरी फिर आवे,
 बहुरि होय धन धर्म, गई सपति फिर पावे;
 होई जो शील सुशील मति, जगत हेतु इम गाइये,
 प्राण गयो फिर मिलत पे, पतन गई फिर पाइये ॥ ६ ॥

— ० —

महात्मा सुन्दरदास कृत ।

तृष्णा का अंग ।

इन्दव छंद ।

नैननि की पलही पल में क्षण आध घरी घटिका जु गई है ।
 जाम गयौ जुग जाम गयौ पुनि साभ गइ तब राति भई है ॥
 आज गई अरु काटिह गई परसों तरसों कहु और ठई है ।
 सुंदर पेसै हिं आयु गई तुसना दिन ही दिन होत नई है ॥१॥

हुमिला छंद

कनहीं कम कौ विललात फिरे सठ जाचत है जन ही जन कौ ।
 तनही तन को अति सोच करे नर खात रहै अन ही अन कौ ॥
 मनही मन की तृष्णा न मिट्टी पुनि राखत हे धन ही धन कौ ।
 छिन ही छिन सुन्दर आयु गयी कइ न गयौ बन ही बन कौ ॥२॥

इदव छंद ।

लाख करोरि अरब्व अरब्वनि नालि पदम्म तहा लग घाटी ।
 जोरिहि जोरि मडार भरे सत्र ओर रही सु जिमों तर दाटी ॥
 तौहु न तोहि सताप भयो सठ सुंदर ते तृष्णा नहिं काटी ।
 सुभक्त नाहिं न काल सदा सिर मारि कै थाप मिलई है माटी ॥३॥

भूष नचावत रकहि राजहि भूष नचाइ कै विश्व धिगीई ।
 भूष नचावत इन्द्र सुवासुर और अनेक जहा लग जोई ॥
 भूष नचावन है अध ऊरध तीनहु लोक गनै कहा कोई ।
 सुंदर जाइ तहा दुख ही दुख ज्ञान बिना न कहू सुख होई ॥३॥

हे तृप्तना कहि कै तुहि थाफ्यो
 तैं कउ कान धरी नहिं परहु बोलत बोलत पेटहि पाफ्यो ।
 हाँ कोउ घात बनाइ कहू जब तैं सब पीसत ही सब फाफ्यो ॥
 फोरु घाँव भये परमोधत तैं अब आगहिं कौं रथ हाँफ्यो ।
 सुंदर सीप गई सब ही चलि तृप्तना कहि कै तुहि थाफ्यो ॥५॥

बिहारी लाल ।

दोहे ।

मेरी भव बाधा हरो, राधा नागरि मोर्य ।
 जा तनु की भाई परे, श्याम हरित छुति होंय ॥१॥
 अधर धरत हरि के परत, आँठ दीठ पट उयोति ।
 हरिन बाँसकी बासुरी, इन्द्र धनुष रंग होति ॥२॥
 जो चाहै चटकन घटै, मैलो होय न भित्त ।
 रज राजस न छुवाइये, नेह चीकने चित्त ॥३॥
 चटक न छाडत घटत ह, सज्जन नेह गभीर ।
 फीको परै न बरु घटै, रग्यौ चाल रग चीर ॥४॥
 नीच हिये हुलसे रहें, गहैं गंद के पोत ।
 उग्यो ज्यौं माये मारिये, त्यों त्यों ऊँचे होत ॥५॥
 कोटि यतन कोऊ करै, परै, न प्रकृतिहिं बीच ।
 नलबल जल ऊँचो चढै, अन्त नीच को नीच ॥६॥

कैसे छोटे नरन तैं सरत घडनि के काम ।
 मढो दमामो जात है, कहि चूहे के चाम ॥ ७ ॥
 मीत न नीति गलीत है, जो धरिये धन जोरि ।
 म्याये खरचे जो रचै तो जोरियै करोरि ॥ ८ ॥
 घर घर डोलत दीन है, जन जन याचत जाय ।
 दिये लोभ चसमा चपनि, लघु पुनि घडो लगाय ॥ ९ ॥
 बसै बुराई जासु मन, ताही के सन्मान ।
 भलो भलो कहि छाँडिये, छोटे ग्रह जपटान ॥ १० ॥
 बुरो बुराई जो तजै, तौ मन परो सफात ।
 ग्यों निकलक मयक लगि, गनैं लोग उतपात ॥ ११ ॥
 घटत घटत संपति सलिल, मन सरोज घटि जाइ ।
 घटत घटत पुनि ना घटै, घर समूल कुम्हिराइ ॥ १२ ॥
 सगति सुमति न पावही, परे कुमति के धध ।
 रागो मेलि कपूर में, होंग न होय सुगंध ॥ १३ ॥
 नर की अरु नलनीर की, एके गति करि जाय ।
 जेतो नीचो है चले, तेतो ऊँचो होय ॥ १४ ॥
 जिन दिन ठेरे थे कुसुम, गई सो बीति बहार ।
 अरु अलि रही गुलाब में, अपत कटीली डार ॥ १५ ॥
 इहि आशा अटम्बो रहै, अलि गुलाब के मूल ।
 हुइहैं यहुरि बसन्त ऋतु, इन डारन थे फूल ॥ १६ ॥
 पट पायें भख काँकरे, सदा परेई सग ।
 सुगी परेना जगत में, एके तुही विहग ॥ १७ ॥
 मरत प्यास पिंजरा पखा, सुआ समय के फेर ।
 आदर है वै बोलियतु, रायस बलि की बेर ॥ १८ ॥
 कर ले सुँधि सराहि के, रहै सवे गहि मौन ।
 गधी गध गुलाब को, गँवई गाहक कौन ॥ १९ ॥

करि फुलेल कौ आचमन, मीठो कहत सराहि ।
चुपकरि रे गधी चनुर, अतर दिखावत काहि ॥ २० ॥

भूषण कवितावली ।

श्रीछत्रसाल विषयक कवित्त ।

निकसत भ्यान ते मयूखैं प्रलय भानु कैसी,
फारैं तम तोम से गयन्दन के जाल को ।
लागत लपटि कंठ चैरनि के नागिनी सी,
रुद्रहि रिभावै डै दै मुडन के माल को ॥
लाल छिति पाल छत्रसाल महा बाहुबली,
कहा लौ बखान करौ तेरी करवाल को ।
प्रति भट कटक कटील केते काटि काटि,
कालिका सी किलकी कलेऊ देत काल को ॥ १ ॥
भुज भुजगेस की वै नगिनी भुजगिनी सी,
खेदि खेदि स्वार्ता दीह दारुन दलन के ।
बखतर पाखरिन बीच धसि जाति मीन,
पैरि पार जात परवाह उयों जलन के ॥
रैया गय चम्पति को छत्रसाल महाराज,
भूपन सकत को बखानि तो बलन के ।
पच्छी पर छीने पेसे परे पर-चोने बीर,
तेरो बरछी ने बर छीने हैं रखन के ॥ २ ॥
रैया राय चम्पति को चढो छत्रसाल सिंह,
भूयन भनत समसेर जोम जमके ।
भाटों की घटा सी उठी गरदै गगन घेरें,
सलैं समसेरें फेरें, दामिनि सी दमके ॥

खान उमरावन के आन राजा रावन के,
 सुनि सुनि उर लागे धन कैसी धमके ।
 बेहर बगारन की अरि के अगारन की,
 नाँवती पगारन नगारन की धमकै ॥ ३ ॥
 हे घर हरद साजि, गैवर गरद सम,
 पैदर के ठट्ट फौज जुरी, तुरजाने की ।
 भूपन भनत राय चम्पति को छत्रसाल,
 रोप्यो रनख्यान हे कै डाल हिन्दुवाने की ॥
 फँ यक हजार परु बार घेरी मार डारे,
 रजक दगनि माना अगिनि रिसाने की ।
 सँद अफगान सन सगर सुतन लागी,
 कपिल सराप लौ तराप तोपयाने की ॥ ४ ॥
 चाक चक्र चमके अचाक चक चहुँ ओर,
 चाकनी फिरत वारु चम्पति कैलाल की ।
 भूपन भनत पातसाही मम जर कीन्हो,
 काहु उमराव ना करेरी करवाल की ॥
 सुनि सुनि रीति विरदैत के बडप्पन की,
 थप्पन उथप्पन की बानी छत्रसाल की ।
 जग जीनि लेना पे वै हूँ दाम देवा भूप,
 सेवा लागे करन महेवा महिपाल की ॥ ५ ॥

श्रीशिवजी विषयक कवित्त ।

इद्र जिमि जम पर वाडव सुश्रम पर,
 रावन सु दम पर रघुकुल राज हैं,
 पौन बारिवाह पर शम्भु रतिनाह पर,
 र्यों सहस्रवाह पर गम द्विजराज हैं,

दावा दुमदुड पर चित्ता मृग भुंड पर,
 भूपन वितुंड पर जैसे मृगराज हैं,
 तेज तम अश पर कान्ह जिमि कंस पर,
 त्यों विपच्छ वश पर शेर शिवराज हैं ॥ १ ॥
 गरुड को दावा जैसे नाग के समूह पर,
 दावा नाग यूथ पर सिंह-शिरताज को,
 दावा पुरहुत को पहारन के पूर पर,
 दावा सब पंछिन के गन पर बाज को,
 भूपन अखंड नवखंड मही मंडल में,
 तम पर दावा रवि किरन समाज को,
 पूरव पछांह देस उत्तरतें दक्खिन लां,
 जहां पातशाही तहां दावा शिवराज को ॥ २ ॥
 प्रेतनी पिशाच अरु निशाचर निशाचरी यों,
 मिलि मिलि आपस में गावत बधाई हैं,
 भेंगें भूत भूरि भिरि भ्रमत भयकर से,
 जूय जूय जोगिनि जमान जुरि आई हैं,
 किलकि किलकि फाली करत कुलाहल सो,
 डौंरु गांह चामकर शकर बजाई हैं,
 शिवा पूछे शिवसों समाज कहि राज चलयो,
 आज शिवराज भौह काहु पै चढाई हैं ॥ ३ ॥
 छूटत कबान वान गोली औं गिलोलन के,
 नाहीं ठहरात मुरचानहु की ओट में,
 कोनो शिवराज बोर ताहि बेर हल्लाहद,
 बाध्यो परहल्ला प्रतिपच्छी भट जोट में,
 मूचन अनत तेरी हिमन सराहो हद,
 नाहीं को चहान बीच तेरे सम चोट में,

ताव दे दे मूछन कगूरनपै पाव दे दे,
 शत्रु शिर घाव दे दे कूदे परे कोट में ॥ ४ ॥
 दुग्ग पर दुग्ग जीते शिरजा शिराजी गाजी,
 भुड रिपु मुडन के उग्र हार फरके,
 भूग्नन भनत याजे जीत के नगारे न्यारे,
 सारे करनाटी भूप सिंहललों सरके,
 नारे लगे शोणित के बहन पनारे लगे,
 भारे लगे धमके सतारे गढ घरके,
 बीजापुर वीरन के गोलकुडा वीरन के,
 दिलही उर मीरन के दाडिमसँ दरके ॥ ५ ॥
 काहु न सुधारी काहु बदरतँ पाव धारी,
 पडव पत्तारी रत्नवारी रजवट की,
 खडी भुजदड चड चचल अकाश खेली,
 लागी पर लाग लेन काहुपै न अटकी ।
 खेल दिल्ली बीच और गोलकुडा बीजापुर,
 खेलत निहारी मरजाद सिंधु तट की,
 भूपन भनत महाराज शिराज वीर,
 तेरी तलवार कँधो नाची नार नट की ॥ ६ ॥
 इन्द्र करि यत्न नित हिरत गजेंद्र ह को,
 हेरत उपेंद्र कामनेनु प्रिय निश कों,
 भूलन भनत विधि हेरे राजहंस निज,
 हेरत चकोर चहु और रजनीश कों,
 सिंह शिवराज कृत सघर पराक्रम कों,
 हेरे भो अचभो सुर फोटी त्रियतीस कों,
 हेरे ना लहत तुव जश मँ हिराने अव,
 हेरत गिरीश गौरी गिरिजा गिरीश कों ॥ ७ ॥

माते मद्वारे जाके द्विन्द निहारे भारे,
 चचल तुरङ्ग सैन शूर रनजीत हैं
 भूखन मनत वान छूटे नाग पुज मम,
 देवत डराने रिपु भागे भयभीत है,
 क्रूर कुरापाती अरु सज्जन तमाम मिलि,
 गहत विवेक नेक न्याय धर्म रीत है,
 कपट अनीत द्वेष काह में न रह्यो लेश,
 नीकी शिवराज राजे, ऐसी राजनीत है ॥ ८ ॥

रायगढ़-वर्णन ।

(१)

मनिमय महल शिवराज के इमि रायगढ़ में राजहीं ।
 लखि यच्छ किन्नर सुर असुर गधर्व हौंसनि साजहीं ॥
 उत्तंग मरकत मन्दिरन मधि बहु मृदग जु बाजहीं ।
 धन समैं मानहु घुमरि करि धन धन पटल गल गाजहीं ॥

(२)

मुक्तान की झालरिन मिलि मधि माल छज्जा छाजहीं ।
 सन्ध्या समैं मानहुँ नयन गन लाल अम्बर गाजहीं ।
 जहँ तहाँ ऊर्ये उठे हीरा किरन वन समुद्राय हैं ।
 मानो गगन तम्बू तन्यो ताके सपेत तनाय हैं ॥

(३)

भूपन भनत जहँ परसि कै मनि पुहपरगन की प्रभा ।
 प्रभु पीत पट की प्रगट पावत सिंधु में धन की सभा ॥
 मुय नागरिन के राजहीं कहुँ फटिक नदलन सग में ।
 पिकसग कोमल कमल मानहुँ अमल गग तरंग में ॥

(४)

आनन्द सौ सुन्दरिन के कहूँ वदन इन्दु उदोत हैं ।
नभमरित के प्रफुलित कुमुद मुकुलित कमल कुल होत हैं ॥
फहुँ चावरी सर कूप राजत चन्द्र मनि सोपान हैं ।
जहँ हंस सारस चक्रवाक विहार करत सनान हैं ॥

(५)

कितहुँ बिसाल प्रयाल जालन जटिन अगन भूमि है ।
जहँ ललित बागनि द्रुमलता मिलि रहै भिलमिल भूमि है ॥
चम्पा चमेली चारु चन्दन चारिहूँ दिसि देखिये ।
लवली लवग इलानि केरे लाखहाँ लगि लेखिए ॥

(६)

फहुँ केतकी कदली करौंदा कुद अरु कर धीर हैं ।
फहुँ दाख दाडिम सेज कटहल तूत अरु जम्भीर हैं ॥
कितहुँ कदम्ब कदम्ब फहुँ हिताल ताल तमाल हैं ।
पीयूष तैं मीठे फले कितहुँ रसाल रसाल हैं ॥

(७)

पुष्पाग फहुँ फहुँ नाग केसरि कतहुँ घकुल असोक हैं ।
फहुँ ललित अगार गुलाब पाटल पटत बेला थोरु है ॥
कितहुँ निगारी माधुरी मिंगारहार फहुँ लसैं ।
जहँ भाति भातिन रंग रंग ग्रिहग आनंद सौ रसैं ॥

(८)

लसत चिहंगम बहु लजनिन चहुँ भांति बाग महँ ।
कोकिल कीर कपोत केलि फलफल घरत नहँ ॥
मञ्जुल महारि मयूर चटुता चातक चमोर गन ।
पियत मधुर मकरन्द करत झकार भृङ्ग धन ॥

भूपन सुवास फल फूल युत छहु ऋतु वसत वसंत जहँ ।
इमि राजदुग्ग राजत रुचिर सुसदायक सिवराज कहँ ॥



मतिरामकृत 'वूँदी' वर्णन ।

दोहा ।

जगत-विद्वित वूँदी नगर, सुख सम्पत्ति को धाम ।
कलियुगह में सत्यजुग, तहाँ करत विश्राम ॥ १ ॥
पढत सुनत मन दै निगम, आगम समृत पुरान ।
गीत कवित्त कलान के, जहँ सब लोग सुजान ॥ २ ॥
सरद घारिधर से लसत, अमल धौर हर धौल ।
चित्रति चित्रित सिखर जहँ, इन्द्र धनुष से नील ॥ ३ ॥
महलनि ऊपर जहँ बने, कञ्चन कलस अनूप ।
निज प्रभानि सौ करत हैं, गगन पीत अनुरूप ॥ ४ ॥
जहँ विमान वनितान के, थम जेल हरत अनूप ।
सोध पातकनि के बसन, होइ विजन अनुरूप ॥ ५ ॥
वीना वेनु निनाद मृग, मोहि अचल करि चन्द्र ।
सोध सिखर ऊपर जहाँ, दम्पति करत अनन्द ॥ ६ ॥
जहाँ छहाँ ऋतु में मधुर, सुनि मृदङ्ग मृदु सोर ।
सग ललित ललनानि के, नृत्य करत गृह मोग ॥ ७ ॥
मरकत लाल प्रवाल मनि, मुकुट हीर अउदान ।
ललित राज पथ में जहाँ, जरकस वसन विकाल ॥ ८ ॥
मन्डल घरपत भूमि के, जलधर सम मातङ्ग ।
विना परनि के खग जहाँ, सुन्दर तरल तुरङ्ग ॥ ९ ॥
सदा प्रफुल्लित फलित जहँ, द्रुम बेलिन के बाग ।
थलि कोकिल कल धनि सनत, लहत थवन अनुराग ॥ १० ॥

कमल कुमुद कुवलयन के, परिमल मधुर पराग ।
 सुरभि सलिल पूरे जहाँ वापी कूप तडाग ॥ ११ ॥
 शुरु चकार चातक चुहिल, कोक मत्त कलहस ।
 जहाँ तरवर सरवरन के, लसत ललित अवतस ॥ १२ ॥
 अक्षैवट बालक उदर, ज्यों ससार समाय ।
 सरल जगत पानिप रह्यो, बूंदी में ठहराय ॥ १३ ॥
 तामें प्रतिबिम्बित मनौ, सम्पत्ति जुत सुर लोक ।
 अर धर नर नारी लसैं, दिव्य रू के ओक ॥ १४ ॥

— * —

देव-कवितावली ।

गोपियों का सौहाद ।

को हमको तुमसे तपसी बिन जोग सिखावन आई है ऊधो ।
 पै अब एही कहौ उनको पिछली सुधि आवत है कबहु धो ॥
 एक भली भई भूप भये जिन्हें भूलि गया वधि माखन दूधो ।
 कूयरी सी अतिसूधी बधू बरु पायो भलो घनश्याम सो सूधो ॥ १ ॥
 रावरो रूप रह्यो भरि नेननि बैननि के रस सौं श्रुति सानो ।
 गात मैं देखत गात तुम्हारेई बात तुम्हारिये 'वान' बखानो ॥
 ऊधो हटा हरि सौं कहिये तुम हौ न इहाँ यह तौ नहि मानो ।
 या तनते बिछुरे तो कहा मनते अनते जु बसो तर जानो ॥ २ ॥
 माहन माई भई मथुरापति देव महामद सौं मन मात्यौ ।
 कोर परे अब कूयरी के हरि या ते कियो हम सौं हित हात्यौ ।
 गोकुत गाँव के लोग गरीब हैं वासु बराबरी ही का यहाँ त्यो ।
 बैठि रह्यो सपनेहु सुन्यो कहूँ राजन सा परजान सौं नात्यो ॥ ३ ॥

पूतना के पय पान करो तन पूत नाते जिसगास बगारत ।
 वेव कहा कहीं मातु पिता हिन बंधुन सो हितु नीके निवाहत ॥
 कारे ही कान्ह निकारे हौ कीलिरहे गुन लीलि पै श्रीगुन थाहत ।
 पन्नग की मनि कीने तुम्हें तुम पन्नग की क्रिबुनी क्रियो चाहत ॥४॥

कस रिपु अस अवतारी यदुवस कोई
 कान्ह सो परमहंस कहै तौ कहा सरो ।
 हम तौ निहारे ते निहारे ब्रजवासिन मैं
 देव मुनि जाको पचिहारे निसि वासरो ॥
 भ्रम न हमारे जप सजम न करैं कछु
 यहि गयो जोग जमुना जल विलासरो ।
 गोकुल गोसाइनि परम सुखदाइनि
 श्रीराधा ठकुगइनि के पायनि को आसरो ॥ ५ ॥
 बाहिर ही बैठो मनि पैठो ब्रज कुज ऊर्ध्व
 बातनि विरूधो जनि सूधो ब्रजलोग पर ।
 देव कौन देखै देखे गोपी के दुसह दसा
 विरह विलाकी रापी प्रेम के प्रयोग पर
 कैसे कहि आवत कुटिल हठ बात सठ
 बात न सुहात कुत्रिजा के सुख भोग पर ।
 सजोग विहारे ते अजोग ही निहारे जोग
 काटिक तिहारे हम चारे या त्रियाग पर ॥ ६ ॥

गोपियों की प्रेम भक्ति ।

न्यारी भई गोपी सो गुपाल की गुपित प्यारी
 पुहुमी उज्यारी मैं पदुम पदन्यास ही ।
 देव देवता सी देखि पूछै हरि देख्यो कहूँ
 देख्यो जो न सनकन नारद न न्यास ही ॥

पच्छिम पयोधि के पुलिन आयो इहु एक
 कालिंदी पुलिन आई आनन उज्यास ही
 लीला लगी करन जु पतनादि कीन्ही श्याम
 कोई बनी कान्ह काई गोपी अनध्यास ही ॥ १ ॥
 फेरि फेरि डेरि डेरि हेरि हेरि हारी कहूँ
 मिल्यो न बिहारी बिहारेया ब्रजजन को ।
 यमुना पुलिन खुलि खुलिन नयन गुन
 गन गाय राय रोय राख्यो मोह मन को ॥
 बंशी कर लीने बंशीवट के निकट देव
 प्रगट्यो हंसत अनुरंजन जो जन को
 दौरि दौरि हंसि हंसि रूसि रूसि लियो हरि
 हियो भरि भँट्यो सब मेढ्यो ताप तन को ॥ २ ॥
 जानति न बाद विधि भेद भरजाद तुम,
 प्रेम के प्रमाद हूँ प्रमानन पनति ही ।
 प्रेम को महातम महातम न माने, पर,
 मातम प्रधानै यहि आनम की गति है ।
 देव अनुकूल आप सरन खरन मूल,
 हरिये हिये के सूल सुन्दर सुमति ही ।
 ऊपर तिहारे पति रति हम हारे न
 निहारे तनु प्रानिन हमारे प्रानपति ही ॥ ३ ॥
 पतना को बैरी यह पतना जसोमति को,
 छोटे ही छपावर की छाती चढो छोहरो ।
 लोटि डाखा सकट पडाखा बच्छफारयो बर,
 कालिय निवारया प्रान अवासर को हरयो ।
 मुख में दिखायो जगु विधि को भुलायो मनु,
 साख्यो मववा को उर पाल्यो ब्रज गोहरो ।

आग्नि को तारो है हमारो भयो आँधि ओट,
 टेत दुख हाँसी को देखावै अथ सो हरो ॥ ४ ॥

वृन्द के नीतिमय दोहे ।

मधुर वचन तें जात मिट, उत्तम जन अभिमान ।
 ननक सीत जलसों मिटे, जैसे दूध उफान ॥ १ ॥
 कछु बसाय नहिं सयलसों, करे निबल सों जोर ।
 चलै न अचल उखार तरु, डारत पवन भकोर ॥ २ ॥
 पर घर कबहु न जाइये, गये घटत है जोति ।
 रवि मडल में जात शशि, छीन कला छवि होति ॥ ३ ॥
 निकट अयुध समुझै कहा, बुधजन वचन विलास ।
 कबहु भेक न जानही, अमल कमल की वास ॥ ४ ॥
 दोषहि सों उमहे गहै, गुण न गहै खल लोक ।
 पिये रधिर पय ना पिये, लगी पयोधर जोक ॥ ५ ॥
 क्यों कीजे ऐसो जतन, जातें काज न होय ।
 पर्वत में खोदे कुआ, कैसे निकसे तोय ॥ ६ ॥
 धन धाढे मन बढ़ गयो, नाहि न मन घट होय ।
 ज्यो जल संग बाढै जलज, जल घट घटे न सोय ॥ ७ ॥
 सत्र तें लघु हे मागवो, थामें फेर न फार ।
 बलि पै जाचत ही भये, बामन तन करतार ॥ ८ ॥
 यीर पराक्रम ना करे, तामों डरत न कोय ।
 बालरू हू के चित्र को, बाघ खिलौना होय ॥ ९ ॥
 भली करत लागे विलम्ब, विलम्ब न बुरे विचार ।
 भयन बनावत दिन लगै, दाहत लगै न बार ॥ १० ॥

सुख सजन के मिलन को, दुर्जन मिले जनाय ।
 जाने ऊप मिठास को, जब मुप निब चवाय ॥ ११ ॥
 जाहि मिले सुख होत है, तिहि विछुरे दुख होय ।
 सूर उदै फले कमल, ता बिन सकुचै सोय ॥ १२ ॥
 कछु कहि नीच न छेडिये, भलो न बाको सग ।
 पथर डारे फीच में, उछरि बिगारे अग ॥ १३ ॥
 सजन बचावत कष्ट ते, रहे निरतर साथ ।
 नैन सहार्द ज्यों पलक, देह सहार्द हाथ ॥ १४ ॥
 बुद्धिबान गभीर कों, सगत लागै नाहिं ।
 उयाँ चदन दिग अहिरहत त्रिप न होय तिहि माहिं ॥ १५ ॥
 धचन पारखी होहु तू, पहले आप न भाय ।
 अनपूछे नहिं भाखिये, यही सीख जिय राख ॥ १६ ॥
 नैन शरण मुप नासिका, सयही के इरु ठौर ।
 कहयौ सुनयौ देख्यो, चतुरन को कछु और ॥ १७ ॥
 भाव भाव की सिद्धि है, भाव भाव में भेव ।
 जो माने तो देन है, नहीं भीत को सेव ॥ १८ ॥
 जैसा गुण दीनो उई, तैसा रूप निबध ।
 ये दोऊ कहाँ पाइये, सोनो और सुगध ॥ १९ ॥
 श्रमर्हा सों सब मिलत है, बिन श्रम मिलै न काहि ।
 सीधी अगुरि घी जम्घो, क्यों ह निरुरे नाहिं ॥ २० ॥
 जा जाको गुन जानही, सो तिहि आदर देत ।
 कोकिल अयहि लेत है, काग निगरी हेत ॥ २१ ॥
 जाही ते कहु पाइये, करिये ताकी आस ।
 रोते मरवर पै गये, कैसे उफत पियाम ॥ २२ ॥
 गुनही नऊ मंगाइये, जो जीवन सुख भौन ।
 आग जरावत नगर नऊ, आग न आनत कौन ॥ २३ ॥

रस अनरस समझे न कछु, पढ़ै प्रेम की गाथ ।
 बीछू मन्त्र न जानहों, साँप पिटारे हाथ ॥ २४ ॥
 कैसे निवहै निवल जन, कर सबलन सों गैर ।
 जैसे बस सागर विषे, करत भगर सों घैर ॥ २५ ॥
 दीवो अवसर को मलो, जासों सुधरै काम ।
 खेती सूखे वरमयो, धन को कौने काम ॥ २६ ॥
 अपनी पहुँच बिचारि कै, करतव करिये दौर ।
 नेते पाँव पसारिये, जेती लांगी सौर ॥ २७ ॥
 बिद्या धन उद्यम बिना, कहौ जु पावै कौन ।
 बिना डुलाये ना मिले, ज्यों पखा की पौन ॥ २८ ॥
 बुरे लगत सिख के वचन, हिये बिचारो आण ।
 करुगो भेषज विन पिये, मिटै न तन की ताप ॥ २९ ॥
 रहे समीप बडेन के, होत बडो हित नेल ।
 सबही जानत यद्वत है, वृक्ष बराबर बेल ॥ ३० ॥
 फेर न ह्वै है कगट सों, जो कीजै व्यापार ।
 जैसे हाँडी काठ की, चढ़ै न दूजी बार ॥ ३१ ॥
 करिये सुज को होत दुख, यह कहौ कौन सयान ।
 वा सोने को जारिये, जासों टूटे कान ॥ ३२ ॥
 नयना देत बताय नब, हिय को हेन अहेत ।
 जेसे निर्मल आरसी, भली बुरी कहि देत ॥ ३३ ॥
 अति परचै ने होत है, अरुचि अनादर भाय ।
 मलयागिरि की भोलनी, चन्दन देत जराय ॥ ३४ ॥
 भले बुरे सब एक सों जाँ लौं बोलत नाहि ।
 जानि परतु हैं काक पिक, ऋतु बसन्त के माहि ॥ ३५ ॥
 हिनह की कहिय न तिहि, जो नर होय अघोध ।
 ज्यों नकटै को आरसी, होत दिखाये कोध ॥ ३६ ॥

सबै सहायक सबल के, कोऊ न निबल सहाय ।

पवन जगायत आग को, दीपाहिं देत बुझाय ॥ ३७ ॥

रोप मिटे कैसे कहत, रिस उपजावन वात ।

ईधन डारे आग माँ, कैसे आग बुझात ॥ ३८ ॥

जो जेहि भावे सो भलौ, गुन को फलु न विचार ।

तज गज मुक्ता भीलनी, पहिरति गुंजा हार ॥ ३९ ॥

दुष्ट न छाडे दुष्टता, कैसे ह सुख दंत ।

धाये हूँ सौ घेर के, काजर होय न सेत ॥ ४० ॥

जाको जैसी उचित तिहिं, करिये सोइ विचारि ।

गीदर कैसे ल्याइ है, गज मुक्ता गज मारि ॥ ४१ ॥

जैसे बधन प्रेम काँ, तैसो बध न और ।

काठहि भेदे कमल को, छेद न निकरै और ॥ ४२ ॥

जे चेतन ते क्यों तजै, जाको जासो मोह ।

बुद्धक के पीछे लग्यो, फिरत अचेतन लोह ॥ ४३ ॥

जो पावै अति उच्चपद, ताको पतन निदान ।

ज्यों तपि तपि मध्याह्न लौं अस्त होतु है मान ॥ ४४ ॥

मूरख गुन समझे नहीं, तौ न गुनी में बूझ ।

कहा भयो दिन को विभी, देखै जौ न उलूक ॥ ४५ ॥

फरै बुराई सुख चहै, कैसे पाये कोइ ।

रोपै विरथा आरु को, आँम कहाँ ते होइ ॥ ४६ ॥

बहुत निबल मिलबल करें, करें जु चाहैं सोय ।

तिनकन की रसरी करी, करी निबन्धन होय ॥ ४७ ॥

साँच भूँठ निणय करै, नीति निपुण जो होय ।

राजहस बिन को करे, क्षीर नीर को दोष ॥ ४८ ॥

कारज धीरे होतु है, काहे होत अधीर ।

समय पाय तरुवर फलै, केतक सींचो नीर ॥ ४९ ॥

बुरी करें तेई बुरे, नाहिं बुरो कोउ और ।
 बनिज करै सो धानियो, चोरी करै सो चोर ॥ ५० ॥
 कछु कहि नीच न छेडियै, भलो न वाको सग ।
 पाथर डारे कीच में, उछरि विगारै अङ्ग ॥ ५१ ॥
 ऊपर दरसै सुमिल सी अतर अनमिल आँक ।
 कपटी जन की प्रीति है, पीरा की सी फाँक ॥ ५२ ॥
 सबसाँ आगे होय कै कबहुँ न करिये बात ।
 सुधरे काज समाज फल, विगरे गारी खात ॥ ५३ ॥
 बुरौ तऊ लागत भली, भली ठौर पर लीन ।
 तिय नैननि नीको लगै, काजर जदपि मलीन ॥ ५४ ॥
 क्षमा खड्ग लीने रहै, खलको कहा बसाय ।
 अगिन परी तृन रहित थन, आपहिते बुझि जाय ॥ ५५ ॥
 ओछे नर के पेट में, रहे न मोटी बात ।
 आध सेर के पात्र में, कैसे सेर समात ॥ ५६ ॥
 जूना खेले • होतु है, सुख सपति को नास ।
 राज काज नलते छुट्यो, पाडव किय बनवास ॥ ५७ ॥
 सरस्वति के भंडार की, बड़ी- अपूरय बात ।
 ज्यों सरचै त्यों त्यों बढै, बिनसरचै घटि जात ॥ ५८ ॥
 मित्र मित्र के काम को, देत विभव करि हेत ।
 जैसे चंद प्रकाश करि, रवि मडल तैं लेत ॥ ५९ ॥
 लोकन के अपवाद को, डर करिये दिन रैन ।
 रघुगति सीता परिहरी, सुनत रजक के घैन ॥ ६० ॥



बैताल के नीतिमय छप्पय ।

अरुण तेज अति रूप, वरन उनको है न्यारो ।
 तिमिर नाश परकाश, जगत को सिरजन हारो ॥
 देव आदि नर भूप, ध्यान उन्हीं को धारो ।
 प्रलय पवन जल नाश, भये इनहीं ते सारो ॥
 बैताल कहे विक्रम सुनो, सकल लोक जिनतें तरन ।
 भानु प्रतापी नित जान कर, नमस्कार सबहीं करत ॥ १ ॥
 वचन छल्यो बलिराज, वचन कौरव व्रत खडो ।
 वचन करन लगे फोश, वचन कौरव वन मडो ॥
 वचन लान हरिचन्द्र, नीच घर नारि समर्थ्यो ।
 वचन लाग जगदेव, शीश ककालिहि अर्थ्यो ॥ १
 पाचा बाच बैताल मनत, तो कर गहि जिहा काटिये ।
 जर जाय लक्ष विक्रम तनय, सो बोलि वचन मत पलटिये ॥ २ ॥
 पहिर भींग ले पटा, पाग शिर टेढ़ी बाधे ।
 घर में तेल न लोन, पीति चेरी सों साधे ॥
 घातन में गढ लेय, युद्ध आपिन नहिं देखे ।
 अघघट घट में जान त्रिया सों मागे लेखे ॥
 जानत है सो जानत सबै, दुख सुख साथी कर्म के ।
 बैताल कहैं विक्रम सुनौ, ये लक्षण नामर्द के ॥ ३ ॥
 मर्द शीश पर नये, मर्द बोली पहिचाने ।
 मर्द खेलावै खाय, मर्द चिन्ता नहिं माने ॥
 मद देय ओ लेय, मर्द को मर्द बचावै ।
 गहिरे सकरे काम, मर्द के मर्द आवै ॥
 पुन मर्द उन्हीं को जानिये, जो दुख सुख साथी कर्म के ।
 बैताल कहैं विक्रम सुनो, ये सब लक्षण मद के ॥ ४ ॥

बुध विन करे वेशार, दृष्टि विन नाच चलावे ।
 सुर विन गावे गीत अर्य विन नाच नचावे ॥
 गुन विन जाय प्रियेश, अरुल विनु चतुर कहावे ।
 थल विन बाधे युद्ध, हाँस विन हेत जनावे ॥
 अन इच्छा इच्छा करे, अन दीठी बातों कहे ।
 बैताल कहे विक्रम सुनो, ए मूरख की जात है ॥१॥
 पाउ विन कटे न पंथ, बाहु विन हटे न दुरिजन ।
 तन विन मिले न राज, भाग्य विन मिले न सज्जन ॥
 गुरु विन मिले न ज्ञान, द्रव्य विन मिले न आदर ।
 विना पुरुष सिंगार, मेघ विन कैस दादुर ॥
 बैताल कहे विक्रम सुनो, बोल बोल बोली हटे ।
 धिक्क धिक्क ए पुरुष को, मन भिलाइ अन्तर कटे ॥२॥
 जीभ जाग अरु भोग, जीभि यहु रोग बढ़ावै ।
 जीभि करे उद्योग, जीभि लै कैद करावै ॥
 जीभि स्वर्ग लै जाय, जीभि सब नरक दिखावै ।
 जीभि मिलावै राम, जीभि सब देह धरावै ॥
 निज जीभि आठ एरुग्र करि, बाँट सहारे तोलिये ।
 बैताल कहे विक्रम सुनो, जीभि संमारे बोलिये ॥३॥
 टका करै कुल हल, टका मिरदङ्ग बजावै ।
 टका चढे सुख गाल, टका सिर छत्र धरावै ॥
 टका माय अरु बाप, टका भैयन को भैया ।
 टका सास अरु असुर, टका सिर लाड लडैया ॥
 अथ एक टके विनु टकटका, रहत लगाये रात दिन ।
 बैताल कहे विक्रम सुनो, धिक्क जीवन एक टके विन ॥४॥
 मरे बेल गरियार, मरै वह अडियल टट्ट ।
 मरे करुसा नारि, मरे वह पसम निखट्ट ॥

बाभन सो मरिजाय, हाथ लै मदिरा प्यावै ॥
 पृत वही मरि जाय, जू कुल में दाग लगावै ॥
 श्रु बे नियाव राजा भरै, तबे नौद भार सोइय ॥
 बैताल कहे विक्रम सुना, एते मरे न राइये ॥ ६ ॥
 दया चट्ट है गई, धरम धँसि गयो धरन म ।
 पुन्य गयो पाताल, पाप भो चरन चरन में ॥
 राजा करे न न्याय, प्रजा की होत खुबारी ।
 घर घर में बेपीर, दुग्धित भ सच नर नारी ॥
 अथ उलटि दानगजपति मगे, सील सँतोष कितै गयो ।
 बैताल कहै विक्रम सुना, यह कलयुग परगट भयो ॥ १० ॥
 ससि बिन सूनी रैन, ज्ञान बिन हिरदै सुनो ।
 कुल सुनो बिन पुत्र, पत्र बिन तट्टर सुना ॥
 गज सुनो इकदँत, ललित बिन सायर सुना ।
 विप्र सुन बिन वेद, और बिन पुहुप बिहूना ॥
 हरि नाम भजन बिन सत श्रु, घटासूनबिन दामिनी ।
 बैताल कहै विक्रम सुनो, पति बिन सूनी कामिनी ॥ ११ ॥

महात्मा श्री नागरीदास जी के पद ।

उज्जल पल्ल की रैन चैन उज्जल रस हैनी ।
 उदित भयो उडराज अरुन दुति मन हरि लैनी ॥
 महा क्रुपित है काम बह्य अस्त्रहि छोड़यो मनु ।
 प्राची दिसि ते पञ्जुलित आवत अग्निउठी जनु ॥
 दहन नानपुर भये मिलन को मन हुलसावत ।
 छावत छपा अमद चन्द उयाँ त्यों नभ आवत ॥

जगमगाति बन जोति सोत । अमृत धारा से ।
 नव द्रुम किसलय दलनि चाह चमकत तारा से ॥
 सेत रजत की रैन चैन चित मन उमहनी ।
 तैसी मन्द सुगन्ध कौन दिन मनि दुख दहनी ॥
 मधि नायक गिरिराज पदिक घृन्दावन भूपन ।
 फटिक सिला मनि भृङ्ग जगमगाति दुति निर्दूषन ॥
 सिला सिला प्रतिचद चमकि किरननि छवि छाई ।
 बिच बिच अम्य कदम्य भम्य भुकि पायनि आई ॥
 ठौर ठौर चहुँ फेर ढेर फूलन के साहत ।
 करत सुगन्धित पवन सहज मन मोहत जोहत ॥
 विमल नीर निरभरत कहू भरना सुख करना ।
 महा सुगन्धित सहज घास कुम कुम मद हरना ॥
 कहूँ कहूँ हीरन खचित रचित मण्डल सुरास के ।
 जटित नगन कहूँ जुगुल खभ भूलनी विलास के ॥
 ठौर ठौर लपि ठौर रहत मनमथ सो भारी ।
 विहरत विविध विहार तहाँ गिरि पर गिरिधारी ॥ १ ॥

किते दिन विन वृन्दावन पाये ।

योही वृथा गयेते अवलौ राजस रग समोये ॥
 छाडि पुलिन फूलन की सज्जा सूल सरन पर सोये ।
 भाने रसिक अनन्य न दर से विमुखन के मुख गोये ॥
 हरि विहार की ठौर रहे नहिं अति अभान्य बल वोये ।
 कलह मराय बसाय भिटारी माया रांड विगोये ॥
 इक सर हाँ के सुख तजि कै हाँ कबहुँ हँसे कहू रोये ।
 कियो न अपने काज परायें भार सोस पर ढोये ॥
 पायो नहीं अनन्द लेस मे सने ।
 नागरि दान चसे कुंजनि में

हम ब्रज सुखी ब्रज के जीव ।

प्राण तन मन नैन सरबसु राधिका को पीव ॥
 कहाँ आनन्द मुक्ति में यह कहाँ मृदु मुसकान ॥
 कहाँ ललित निकुञ्ज लीला मुरलिका कल गान ॥
 कहाँ पूरन सरद रजनी जोन्ह जगमग जोत ।
 कहाँ नृ पुर घीन धुनि मिलि रासमण्डल होत ॥
 कहाँ पाँति कदम्ब की भुकि रही जमुना बीच ।
 कहाँ रग विहार फागुन मचति केसर घोब ॥
 कहाँ श्रवणन की रतन जगमगनि दसधा रग ।
 कठ गद गद रोम हरयन प्रेम पुलकित श्रग ॥
 दास नागर चहत नहीं सुख मुक्ति आदि अपार ।
 सुनहु ब्रजवसि श्रवन में ब्रज वासनन की गार ॥३॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

स्वामी हित वृन्दावन दास जी के पद ।

यह छवि बाढी री रजनी खेलत रास रसिक मनि माई ।
 कानन घर सौरभ की महकनि तैसिय सरद जुन्हाई ॥
 पुलिन प्रकाश मध्य मनि मण्डल तहँ राजत हरि राधा ।
 प्रतिविद्यत तन दुरनि मुरनि में तव छवि बढत अगाधा ॥
 गौर श्याम छवि सदन बदन पर फबि रहे श्रमकन पेसे ।
 नील कनक श्रम्बुज अतर धरे ओपि जलज मनि जैसे ॥
 झलकत हार चलत कल कुटल मुख भयव ज्यों सोहैं ।
 वारों सरद निसा समि केतिक मैं कटाच्छनि मोहैं ॥
 धेइ धेइ वचन बढत प्रिय प्यारी प्रगटत नृत्य नई गति ।
 वृद नवद हिततान गान रस अलिहित रूप कुशल अति ॥१॥

हों बलि जाऊँ मुत्र सुखरास ।

जहाँ त्रिभुवन रूप सोभा रीझि कियो निवास ॥
 प्रतिविम्ब तरल कपोल कमनी युग तरौना कान ।
 सुधा सागर मध्य बैठे मनौ रचिगुग न्हान ॥
 छवि भरै नव कज दल से नंह पूरित नैन ।
 पूतरी मनि मधुग छाँना बैठि भूले गैन ॥
 कुटिल भृकुटी नमित सोभा कहा कहों विशेष ।
 मनहुँ ससि पर श्याम बदरी युगुल किंचित रेख ॥
 हरत माल विशाल ऊपर तिलक नगनि जराय ।
 मनहुँ चढे विमान ग्रह गण ससिह भेटत जाय ॥
 मद मुसुकनि दसन दमकनि दामिनी दुति हरी ।
 वृन्दावन हित रूप श्यामिनी कौन विधि रचिकरी ॥ २ ॥

सोभा केहि विधि वरनि सुनाऊँ ।

यक रसना सोउ लाचन हानी कहौ पार क्यों पाऊँ ॥
 अग अग लागन्य माधुरी बुधि बल किती बताऊँ ।
 अतुलित सुमति कहि गये क्या दृगपलरजि धरिजु उचाऊँ ॥
 नत्र वैसंधि दुहुनि नित उलहन जय देखौ तव श्रोरे ।
 यहि कौतुक मंरो सुनि सजनी चित न रहत यक ठौरै ॥
 लोचन न सुनी दृगन नहीं देखी ऐसी रूप निकाई ।
 मेरी तेरी कहों चली रग मृग मति प्रेम बिकाई ॥
 कवह गौर श्याम तन कपहुँ लोचन प्यासे धावैं ।
 कह बटि जात सिंधु को पछी जो चोचन भरि लावैं ॥
 सुन्दरना की हृद मुग्लीन वेहद छवि थी राधा ।
 गावैं धपु अनन्त बरि मारु नऊ न पूजे साधा ॥
 न्याइ काम करवट है निकसत पिय अरु रूप गुमानी ।
 वृन्दावन हित रूप कियो बस लो कानन की राती ॥ ३ ॥

गिरिधर की कुण्डलियाँ ।

पुत्र प्राण तैं अधिक है, चारिउ युग परिमान ।
 सो दशरथ नृप परिहरे, वचन न दीन्हों जान ॥
 वचन न दीन्हों जान, बडन की वृद्धि बडाई ।
 बात रहे सो -काज, और वरु, सरखस -जाई ॥
 कहै गिरिधर कविराय, -भये नृप, दशरथ ऐसे ।
 पुत्र प्राण परिहरे, वचन परिहरे न ऐसे ॥ १ ॥
 साई घेटा बाप के, विगरे, भयो अकाज ।
 हरणाकश्यप कंस को, गयो दुहुन को राज ॥
 गयो दुहुन को राज, बाप- घेटा में विगरी ।
 दुश्मन - दावागीर, हँसे बहु मडल नगरी ॥
 कहै गिरिधर कविराय, -युगन याही चलि आई ।
 पिता पुत्र के बैर, लाभ, पकौ नहि साई ॥ २ ॥
 साई पुर ज्वाला उठो, -आसमान ते धाय ।
 अधहि पंगुहि -छोडिके, -पुरजन चले पराय ॥
 पुरजन -चले पराय, -अन्ध-यक मन्त्र विचारो ।
 पंगुहि, लीन्हे कध, दूष्ट बाकी पंगु धारो ॥
 कहै गिरिधर, कविराय, -सुमति ऐसी, चलिआई ।
 बिना सुमति -को राज, गयो रावण -को साई ॥ ३ ॥
 दौलत पाइ - न पाइये, सपने में अभिमान ।
 चञ्चल है दिन चार को, ठाड, न-रहत निदान ॥
 ठाड न रहत निदान, जियत जग में यश लीजै ।
 मीठे वचन सुनाय, विनय सबही सो कीजे ॥
 कहै गिरिधर कविराय, अरे यह सब घट, तौलत ।
 पाहुन, निशिदिन चारि, रहत सबहि के दौलत ॥ ४ ॥

कहै गिरधर कविराय, सबै यामें सुधि आई ।
 शीतल जल फल फूल, समय जनि चूकी साई ॥ १३ ॥
 पानी बाढो नाव में, घर में बाढो दाम ।
 दोऊ हाथ उलीचिये, यही सयानो काम ॥
 यही सयानो काम, राम को सुमिरण कीजे ।
 पर स्वारथ के काज, शीश आगे धरि दीजे ॥
 कहै गिरधर कविराय, बडन की याही बानी ।
 चलिये चाल सुचाल, राखिये अपनो पानी ॥ १४ ॥
 राजा के दरबार में, जैसे समया पाय ।
 साई तहां न बैठिये, जहां कोउ देय उठाय ॥
 जहां कोउ देय उठाय, बोल अन बोले रहिये ।
 हसिये नाहिं हसाय, बात पूछे ते कहिये ॥
 कहै गिरधर कविराय, समय सो कीजे काजा ।
 अति आतुर नहिं होय, बहुरि अनखैरै राजा ॥
 कृतघन कयहु न मानही, कोटि करे जो कोय ।
 सर्वस आगे राखिये, तऊ न अपनो होय ॥
 तऊ न अपनों होय, भले की भली न माने ।
 काम काढि चुप रहै, फेरि तिहि नहिं पहिचाने ॥
 कहै गिरधर कविराय, रहत नितही निर्भय मन ।
 मित्र शत्रु ना एक, दाम के खालच कृतघन ॥ १५ ॥
 आत्म रथी शरीर रथ, बुद्धि सारथी जान ।
 मन डोरी इन्द्रिय हय, मारग विषय पिछान ॥
 मारग विषय पिछान, देह इन्द्रिय मन योगा ।
 दुख सुख भोगै भोग, तत्त्ववित कहै प्रयोगा ॥
 कहै गिरधर कविराय, है पही परमात्म ।
 बुद्धि सारथी जान, देह रथ रथी जु आत्म ॥ १७ R

मया मोह मद राग पुनि, ममता दम्भ सकान ।
 यह जामे नहि पाइये, सो परमेश्वर राम ॥
 सो परमेश्वर राम, सर्वका जाननहार ।
 और सबे अर्ध्यस्त, आप धिष्ठान अपारा ॥
 कहै गिरधर कविराय, ध्यान धर सुनरे भाया ।
 आश्रय आशा तजि, आरोपित जिसमें माया ॥१८॥
 मेरी तेरी छोड़ कै, पक्षापक्षहि नाप ।
 राग द्वेष को दूर कर, निजानन्द रस चाख ॥
 निजानन्द रस चाख, और रस लागै फीके ।
 एक जान के भये, दुख मिट जावै जी के ॥
 कहै गिरधर कविराय, रङ्ग जो परै गेरी ।
 तब यह होवै सफल, तजे जय मेरी तेरी ॥१९॥
 काल काम करना जोऊ, सो तो कीजे आज ।
 मूल अविद्या नीदि ते, शीघ्रहि तू अब जाग ॥
 शीघ्रहि तू अब जाग, अपना सब करलेकारज ।
 पैसो मान्य देह, फेर कय मिलिही आरज ॥
 कहै गिरधर कविराय, काट कर भ्रम के जाल ।
 लखो आपको ग्रह, कालजो जो है काल ॥२०॥

पद्माकर के कवित्त

सुदुर कवित्त ।

आयो मन हाथ तब आयवो रह्यो न कह्यु,
 भयो गुरु ज्ञान फेर भायवो कहाँ रह्यो ।
 कहै घनाकर सुगन्ध की तरङ्ग जैये,
 पायो सतसङ्ग फेर पायवो कहाँ रह्यो ॥

गंगा को चरित्र लखि भाखैं यमराज ऐसे,
 परे चित्रगुप्त मेरे हुकुम में कान दै ।
 कहै पद्माकर ये नरकन मूढ़ कर,
 मूढ़ दरवाजन को छोड़ यह थान दै ।
 देख यह देव-नदी किये घश देव मनि,
 दूतन बुलाइ के बिदा के घेऊ पान दै ।
 फार डोर फरद मिटेर रोज नामे डार,
 खातो खत जान दै बही को यहि जान दै ।
 ममपुर द्वारे के किंवारे लगे तारे कोऊ,
 है न रसवारे ऐसे बन के उजारे हैं ।
 कहै पद्माकर तिहारे प्रण घाटे जेते,
 करि अघभारे सुरलोक को सिधारे हैं ।
 सुजन सुपारे करें पुरान उजियारे अति,
 पतित कनारे भवसिन्धु ते उतारे हैं ।
 काहु नैन तारे तिन्हें गंगा तुम तारे आज,
 जेते तुम तारे तेते नभ में न तारे हैं ॥ ६ ॥

वसन्त-वर्षा-शरद ऋतु वर्णन ।

कूलन में केलि में कछारन में कुजन में,
 फ्यारिन में कलिन कलीन किलकंत हैं ।
 कहै पद्माकर परागन में पान हू में,
 पानन में पीक में पलोसन पतग है ।
 हार में दिसान में दुनी में देख देखन में,
 देखो दीप दीपन में दीपत दिगत है ।
 बीथिन में ब्रज में नवेलिन में वेलिन में,
 यनन में बागन में बगरो बसत हे ॥ १ ॥

और भाति कुजन में गुजरत भीर भीर,
 और डोर भौरन में बौरन के है गये ।
 कहै पद्माकर सु औरै भाति गलियान,
 छलिया छबीले छैल और छबि छूबे गये ॥
 और भाति विहग समाज में अवाज होत,
 ऐसो ऋतुराज के न आज दिन है गये ।
 औरै रस औरै रीति औरै राग औरै रग,
 औरै तन औरै मन औरै वन है गये ॥ २ ॥
 पात बिन कीन्है ऐसी भाति गन येलिन के,
 परत न चीन्है जे ये लरजत लुज हैं ।
 कहै पद्माकर बिसासी या वसंत के सु,
 ऐसे उतपात गोंत गोपिन के भुज हैं ॥
 ऊँधौ यह सुधौ सो सदेशो कटि दीजो भले,
 हरिसौ हमारे हान फूले वन कुज हैं ।
 किसुक गुलाब कंचनार औ अनारन की,
 डारन पै डोलत अगारन के पुज हैं ॥ ३ ॥
 मल्लिकेन मंजुल मल्लिद मतवारे मिले,
 मद मद मारुत सुहीम मनसा की है ।
 कहै पद्माकर त्यों नदन नदीन नित,
 नागर नवेलिन की नजर नसाकी है ॥
 दौरत दरेरी देत दादुर सुदेव दौह,
 दामिनि दमंकत दिसानि मै दसा की है ।
 बहलनि बुंदनि चितोक बगुलान बाग,
 बगलान येलिन बहार बरपा की है ॥ ४ ॥
 चंचला चमकै चाह औरनत चाह भरी,
 चरज गई थी फेर चरजन लागीरी ।

कीधौ महारुद्र जू के तीसरे बिलोचन की,
 खुलन लगी है कहैं 'कोर' तेज तरकी ॥
 ग्वाल कवि कहत सुदर्शन को म्यान किधौ,
 उघरयो कहतें दूटि सीवन है सरकी ।
 हाय धिरहीन की कि लाय विरहागिन की,
 देत है जंराय जेठी धुप-दूपहर की ॥ ३ ॥
 कातिकादि चारों मास तखत बिछाय वैद्यो,
 बहल सजल जब छत्र छवि छाई है ।
 जब तब मेह धार चौर चारु दोरियत,
 सूर दूर पौन की बजीरी सरसाई हैं ।
 ग्वाल कवि बरफ बिछावत कुहर दल ,
 भिरनी-प्रबल नीकी नौबत बजाई है ।
 शीत बादशाह सो न और कोऊ दरसाय,
 पाय बादशाही घाटे सबको रजाई है ॥ ४ ॥
 विविध बनातें किनखाप की कनातें तामें,
 दीरघ दुचोवे हैं सिचोये हक हर्दा में ।
 चादनी चौवन पै परदे दरीचन में,
 दुहरे दुलचे हैं गलीचे गोल गद्दी-में ।
 ग्वाल कवि भांति भांति भोजन हैं भामिनी हैं,
 दीप हैं दुशालें हैं मशाले मैन मही में ॥
 चापि के चुहदी साज सोज पै बिहदी बेश,
 करंयो शीत रही तब डूब्यो जाय नही में ॥ ५ ॥
 रैन घटि घटि के बदन लाग्यो दिन मान,
 लागी गरमान भानु कुति घट संग की ।
 सीरी सीरी पवन हितान लागी हिरया में,
 धीरी धीरी आवत सुगंध रङ्ग रङ्ग की ॥

ग्वाल कवि कहै ठढ साफ ते सवारे लग,
उठत तरंग तामे मदन उमग की ।
सीत में शिशिर की लगी है होन डगमग,
मग मग होन लागी जगमग रङ्ग की ॥ ६ ॥

— * —

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र रचित।

गंगा वर्णन

नव उज्ज्वल जलधार हार हीरक सी सोहति ।
यिच बीच छहरति बूंद मध्य मुक्ता मनि पोहति ॥
लोल लहर लहि पवन परु पै इक इमि आवत ।
जिमि नर-गन मन विविध मनोहर करत मिटावत ॥ १ ॥
सुभग-स्वर्ग-सोपान सरिस सब के मन भावत ।
दरशन मज्जन पान त्रिविध भय दूर मिटावत ॥
श्रीहरिपद-नख चन्द्रकान्त मनि द्रवित सुधारस ।
ब्रह्म-कमंडल मडन भव पडन सुर सरवस ॥ २ ॥
शिव सिर-मालतिमाल, भगीरथ नृपति पुन्य फल ।
पेरावत-गज गिरि-पवि हिम-नग कंठहार कल ॥
सगर-सुम्न सठ सहस्र परस जल मात्र उधारण ।
अग्नित धारा रूप धारि सागर सचारण ॥ ३ ॥
कासी कह प्रिय जानि ललकि भेट्यो जग धाई ।
सपने ह नहिं तजी, रही अकम लपटाई ॥
कहु वंधे नवघाट उच्च गिरिवर-सम सोहत ।
कहु छतरी कहु मदी घडी मन मोहत जोहत ॥ ४ ॥
धवल धाम चहु ओर फरहरत धुजा पनाका ॥
घहरत घंटा धुनि धमकत धौंसा करि साका ॥

मधुरी नौबत बजत कहू नारी नर गावत ।
 वेद पढत कहू द्विज कहू जोगी ध्यान लगावत ॥ ५ ॥
 कहू सुन्दरी नहात नीर कर-जुगल उछारत ।
 जुग श्रवुज मिलि मुक गुच्छ मनु सुच्छ निकारत ।
 धाश्रत सुन्दरि बदन करन अति ही छबि पावत ।
 बारिधि नाते ससि कलक मनु कमल मिटावत ॥ ६ ॥
 सुन्दर-ससि मुख नीर मध्य इमि सुंदर सोहत ।
 कमल बेलि लहलही नवल कुसुमन मन मोहत ॥
 दीठि जही जह जात रहत तिनही ठहराई ।
 गगा-छवि हरिचन्द कहू बरनी नहि जाई ॥ ७ ॥

यमुना वर्णन

तरनि तनूजा-तट तमाल तरुवर बहु छाये ।
 भुके कूल सौ जल-परसन हित मनई सुहाये ॥
 किंधौ मुकुर मैं लखत उभकि सव निज निज सोभा ।
 कै प्रनवत जल जानि परम पावन फल लोभा ॥
 मनु आतप बारन तीर कौ सिमिटि सबै छाये रहत ।
 कै हरि सेवा हित नै रहे निरखि नैन मन सुख लहत ॥ १ ॥
 कहू तीर पार कमल अमल सोभित बहु भातिन ।
 कहू संचालन मध्य कुमुदिनी लागि रहि पातिन ॥
 मनु दृग धारि अनेक जमुन निरखत ब्रज सोभा ।
 कै उमगे प्रिय प्रिया प्रेम के अनगिन गोभा ॥
 कै करिके कर बहु पीय कौ टेरत निज दिग सोहई ।
 कै पूजन को उपचार लै चलति मिलन मन मोहई ॥ २ ॥
 कै पिय पद उपमान जानि एहि निज उर धारत ।
 कै मुन करि बहु भूगन मिम अस्तुति उधारत ॥

कै ब्रज तिय गन चदन कमल की भलकैत भाई ।
 कै ब्रज हरिपद परस हेत कमला बहु आई ॥
 कै सात्विक अरु अनुराग दोउ ब्रजमण्डल बगरे फिरत ।
 कै जानि लक्ष्मी भौन एहि करि सतधा निजजल धरत ॥ ३ ॥
 तिन पै जेहि छिन चन्द जोति राका निसि आवति ।
 जल में मिलि कै नभ अचनी लौ तान तनावति ॥
 होत मुकुर मय सवै तवै उज्जल इक शोभा ।
 तन मन नैन जुडावत देखि सुन्दर सो सोभा ॥
 सो को कवि जो छवि कहि सकै ताछन जमुना नीर की ।
 मिलि अचनि और अम्बर रहत छवि इसकी नभतीर की ॥ ४ ॥
 परत चन्द्र प्रति विम्ब कहूँ जल मधि बमकायो ।
 लोल लहर लहि नचत कबहुँ सोई मन भायो ॥
 मनु हरि दरसन हेत चन्द जल बसत सुहायो ।
 कै तरंग कर मुकुर लिये सोभित छवि छायो ॥
 कै रास रमन में हरि मुकुट आभाजल दियरात है ।
 कै जल उर हरि भूरति बसति ता प्रतिबिम्ब लखात है ॥ ५ ॥
 कबहुँ होत सतचन्द कबहुँ प्रगटत दुरि भाजत ।
 पवन गगन बस विम्ब रूप जल में बहु साजत ॥
 मनु ससि भरि अनुराग जमुन जल लोटत डोलै ।
 कै तरंग की डोर हिंडोरन करत कलालै ॥
 कै बाल गुठी नभ में उड़ी सोहत इत उत धावती ।
 कै अगगाहत डोलत कोऊ ब्रज रमनी जल आवती ॥ ६ ॥
 मनु जुग पच्छ-पतच्छ होत मिटि जात जनुम जल ।
 कै तारागन टगन लुकत प्रगटत ससि अचिकन ॥
 कै कालिन्दी नीर तरङ्ग जितो उपजावत ।
 तितनो ही धरि रूप मिलन हित तासों धावत ॥ ७ ॥

कै बहुत रजत चकई चलत कै फुहार जल उच्छरत ।
 कै निसिपतिमल्ल अनेक विधि उठि बैठत कसरत करत ॥७॥
 कूजत, कहु कलहस, कहु मज्जत पारावत ।
 कहु कारडव उठत कहु जल कुक्कुट, धावत ॥
 चक्रवाक, कहु बसत, कहु धक ध्यान लगावत ।
 सुक, पिक जल कहु पियत कहु झमरावलि गावत ॥
 कहुं तट पर नाचत मोर बहू रोर विविध पच्छी करत ॥
 जलपान न्हान करि सुख भरे तट सोभा सब जिय धरत ॥८॥
 कहु बालुका विमल सकल कोमल बहु छाई ।
 उज्जल भलकत रजत सिढी मनु सरस सुहाई ॥
 पियः के आगम हेत पांवडे मनहुं विछाये ।
 रत्न रासि करि चूर कूल में मनु बगराये ॥
 मनु मुक्त मांग सोभित भरी, श्याम नीर चिकुरन परसि ।
 सत गुन छायो कै तीर में, बज्र निवास लखि हिय हरसि ॥९॥

—ॐ—

पण्डित श्रीधर पाठक रचित ।

हिमालय ।

उत्तर दिशि "नगराज" अटल छवि सहित बिराजत ।
 लसत श्वेत सिर मुकुट भलक हिम शोभा म्राजत ॥
 बर्देन देश सन्निधे कनक आभा आभासत ।
 अधर भाग की श्याम बरन छवि हृदय हुलासत ॥
 श्वेत पीत संग श्याम धार अनुगत सम अन्तर ।
 सोहत त्रिगुन त्रिदेव त्रिजग प्रतिभास निरतर ।
 विलसत सो तिहुँकाल त्रिविध सुठि रेख अनूपम ।
 भारतवर्ष विशाल भाग भूपित त्रिपुण्ड्र सम ॥

उज्जल ऊँचे सिंगर दूर देशन लों चमकत ।
 परत भानु नव किरन प्रात सुचरन सम दमकत ॥
 लता पुरुष धन राजि सदा ऋतुराज सुहावत ।
 हरी भरी डहडही वृक्षमाला मन भावत ॥
 कोकिल फीर कदम्ब श्रम्य चढि गान सुनावत ।
 स्यामा चारु सुगीत मधुर सुर पुनि पुनि गावत ॥
 कहूँ हारीत फपोत कहूँ मैना लखि परियत ।
 कहूँ कहूँ रेचरवर चक्रोर के दरसन करियत ॥
 देवदार की डार कहूँ लगूर हिलावत ।
 कहूँ मरुट्ट को कटक वेग सों तरु तरु धावत ॥
 विकसित नित नव कुसुम तरुन तरु मुकुलित धौरत ।
 अलयेले अलि चन्द कलिन के ढिग ढिग भौरत ॥
 भरना जहँ तहँ भरत करत कल छर छर जल रघ ।
 प्रियत जीव सो श्रम्बु श्रमृत उपमा हिम सम्भर ॥
 पवन सीत अति सुप्रत धुभावत बहु त्रिधि तापा ।
 वादर धरमत, परसत, धरमत, आपहि आपा ॥
 गंगा गौमुख अवत कहे को सोभा ताकी ।
 चरने जन्मस्थली, यहकि अथवा जमुना की ॥
 सतलज व्यास चिनाव प्रभृति पजाव पचजल ।
 सरयू आदि अनेकन नदियन को निसरन थल ॥
 पृष्ठ भाग रमनीक, रचिर राजत रावण हृद ।
 ग्रहन करत निज देह, सिन्धु शरु ब्रह्मपुत्र नद ॥
 हरिद्वार केदार यदरिकाश्रम नी शोभा ।
 लखि ऐसो को मनुज जासु मा कहूँ न लोभा ॥
 पुनि देखिय कममीर देस नैपाल तराई ।
 सिकम और भूटान राज्य आसाम लगाई ॥

दच्छिनभुज अफगान राज मस्तक सौ भेंटत ।
 चाम बाहु से चरमा के कच मार समेटत ॥
 उयों समर्थ बलवान सुभावहिं सो, उदार मन ।
 देत अभय, वरदान, मानयुतं निज आश्रित गन ॥
 आर्यावतं पुनीत ललकि हिय भरि आलिगत ।
 गंगा जमुना अश्रु प्रेम प्रगटत हृदयंगत ॥
 अगनित पर्वत खंड चहुँ दिशि देत दिखाई ।
 सिर परसत आकाश चरन पांताल छुआई ॥
 सोहत सुन्दर खेत पांति तर ऊपर छाई ।
 मानहु विधि पट हरित स्वर्ग सोपान बिछाई ॥
 गहरे गहरे गत खडु दीर्घ गहराई ।
 शब्द करत ही घोर प्रतिध्वनि देई सुनाई ॥
 तहाँ निपट निशंक वन्य पशु सुख सौं विचरत ।
 करत फेलि कल्लोल मुदित आनन्दित बिहरत ॥
 कहूँ इधन की ढेर सिद्ध आवास जनावत ।
 कहूँ समाधिस्थित जोगी की गुहा सुहावत ॥
 विविध विलच्छन दृश्य सृष्टि सुखमा सुख मडल ।
 नन्दनवन अनुरूप भूमि अमिनय रगस्थल ॥
 प्रकृति परम चातुर्य अनूपम अचरज आलय ।
 'श्रीधर' दृग छकि रहत अटल छवि निरखि हिमालय ॥

काश्मीर वर्णन ।

धनि धनि श्री काश्मीर-धरनि मनहरनि सुहावनी ।
 धनि कश्यप-जस धुजा, विश्वमोहिनि मनभावनि ॥
 धन्य आर्य्य—कुल—धर्म—पर्म—प्राचीन—पीठ—यल ।
 धन्य सारदा-सवनि अवनि, त्रैलोक्य-पुन्य फल ॥

धन्य पुरातन, प्रथित धाम, अभिराम अतुल-छवि ।
स्वर्ग-सहोदरि धरनि, धरनि हारे कोविद कवि ॥

। * * * *

प्रकृति यहाँ एकान्त घेठि निज रूप सधारति ।
पल पल पलटति भेस छनिक छवि छिन छिन धारति ॥
बिमल अम्बु सर मुकुरन महं मुख बिम्ब निहारति ।
अपनी छवि पै मोहि आपही तन मन धारति ॥
सजति, सजावति, सरसति, हरसति, दरसति प्यारी ॥
बहुरि सराहति भाग पाय सुठि चित्तरसारी ॥
विहरति विविध तिलास-भरी जोवन के मदसनि ।
ललकति, किलकति, पुलकति, निरखति थिरकति वनिठनि ॥
मधुर मज्जु छवि पुज छटा छिरकति धन कुजन ।
चितवति, रिझवति, हसति, डसति, मुसिफ्याति, हरति मन ॥

। * * * *

यहं स्वरूप सिंगार रूप धरि धरि बहु भांतिन ।
सर, सरिता, गिरि, शिखर, गगन, गहर, तरुधर, तृन ॥
पुरन करिवे काज चाहना अपने मन की ।
किंकरता करि रही प्रकृति-पंकज-चरनन की ॥

* * * *

चहुँदिसि हिमगिरि-सिखर, हीर-मनिमौलि अचलि मनु ।
कप्रत सरित सित-धार, द्रवत सोइ चन्द्रहार जनु ॥
फल फूलन छवि छटा छई जो धन उपवन की ।
उदित भई मनु अचनि-उरसों निधि रतनन की ॥
नुहिन सिखर, सरिता, सर, त्रिपिनन की मिलि सो छवि ।
छई मडलाकार, रही चारहुँ दिसि यो फवि ॥
मानहु मानिमय मौलि माल-आरुति अलवेली ।

याँधि विधि अनमोल गोल भारत सिर सेली ॥

* * * * *
 सुरपुर अरु कश्मीर दोउन में को हैं सुन्दर ।
 को सोमा को, मौन रूप की कौन समुन्दर ?
 काको उपमा उचित दैन दोउन में काकी ।
 याको सुर पुर की अथवा सुरपुर काँ याकी ?
 याको उपमा याही की मोहि देत सुहावै ।
 या सम दूजौ ठौर, सृष्टि में दृष्टि न आवै ॥
 यही स्वर्ग सुरलोक, यही सुरकानन सुन्दर ।
 यहि अमरन की ओक, यहीं कहँ बसत पुरन्दर ॥

* * * * *
 सो श्रीधर-दूग बसी प्रेम-अम्बुद-रस देनी ।
 पुन्य अवनि सुख सवनि, अलौकिक-सोमा छेनी ॥
 पैसु यथारथ महिमा नहिं मोहिं शक्ति बरानन ।
 सहसा नहिं कही सकहिं एकहिं सहसन सहसानन ॥
 कविगन को कल्पना-कल्पतरु काम धेनु सी ।
 मुनियन काँ तपधाम, ब्रह्म आनन्द ऐनु सी ॥
 रासकन काँ रसथान, प्रान, सर्वस, जीवन, धन ।
 प्रकृति प्रेमिनी काँ सुकेलि कीडा-कलोल-वन ॥
 (काश्मीर-सुपमा से) पक्षकोट, प्रयाग ।

पं० अयोध्या सिंह उपाध्याय रचित ।

कर्मवीर । ('पद्य प्रमोद' से)

(पदे पद ।)

देखकर जो विघ्न-बाधाओं को ध्वराते नहीं ।
भाग पर रह करके जो पीछे हैं पछताते नहीं ॥
काम कितना ही कठिन हो पर जो उकताते नहीं ।
भौंह पड़ने पर भी जो चंचल हैं दिखलाते नहीं ॥
होते हैं थक आन में उनके घुरे दिन भी भले ।
सब जगह सब काल में रहते हैं वे फूले फले ॥ १ ॥
आज जो करना है कर देते हैं उसको आज ही ।
सोचते कहते हैं जो कुछ कर दिवाते हैं वही ॥
मानते जी की हैं सुनते हैं सदा सयफी कही ।
जो मदद करते हैं अपनी इस जगह में आप ही ॥
भूल कर वे दूसरे को भुँह कभी तकते नहीं ।
कौन ऐसा काम है वे कर जिसे सकते नहीं ॥ २ ॥
जो कभी अपने समय को यों बिताते हैं नहीं ।
काम करने की जगह घातें बनाते हैं नहीं ॥
आज कल करते हुए जो दिन गँवाते हैं नहीं ।
यत्न करने में कभी जो जी चुराते हैं नहीं ॥
घात है वह कौन जो होती नहीं उनके किये ।
वे नमूना आप बन जाते हैं श्रीरों के लिये ॥ ३ ॥
गगन को छूते हुए दुर्गम पहाड़ों के शिखर ।
वे घने जंगल जहाँ रहता है तम आठों पहर ॥
गर्जते जल घंसी की उठती हुई ऊँची लहर ।
आग की भयदायिनी फैली दिशाओं में लहर ॥

ये कँपा सकती कभी जिसके कलेजे को नहीं ।

भूलकर भी वह नहीं नाकाम रहता है कहीं ॥ ४ ॥

चिलचिलाती धूप को जो चाँदनी देव बना ।

काम पडने पर करें जो शेर का भी सामना ॥

हँसते हँसते जो चया लेते हैं लोहे का चना ।

“है कठिन कुछ भी नहीं” जिनके है जी में यह ठना ॥

कोस कितने हैं चलें पर वे कभी थकते नहीं ।

कौन सी हैगाँठ जिसको खोल वे सकते नहीं ॥ ५ ॥

भीकरी को वे बना देते हैं सोने की डली ।

रेग को करके दिखा देते हैं वे सुन्दर खली ॥

वे धूलों में लगा देते हैं चपे की कली ।

काक को भी वे सिखा देते हैं कोकिल-काकली ॥

ऊसरों में हैं खिला देते अनूठे वे कमल ।

वे लगा देते हैं उकटे काठ में भी फूल फल ॥ ६ ॥

काम को आरम्भ करके यो नहीं जो छोड़ते ।

सामना करके नहीं जो भूल-कर मुँह मोड़ते ॥

तो गगन के फूल बातों से बूथा नहीं तोड़ते ।

सपदा मन से करोडों की नहीं जो जोड़ते ॥

ज गया हीरा उन्हीं के हाथ से है कारवन ।

काँच को करके दिखा देते हैं वे उज्ज्वल रतन ॥ ७ ॥

विर्तों को काटकर सड़कें बना देते हैं वे ।

सैकड़ों मरुभूमि में नदियाँ - बहा देते हैं वे ॥

गम जल निधि-गर्भ में बेड़ा चला देते हैं वे ।

जगलों में भी महा-भगल रचा देते हैं वे ॥

दे नभ तल का उन्होंने है बहुत बतला दिया ।

है उन्होंने ही निकालीतार की सारी किया ॥

कार्य-थल को, वे कभी नहिं पूछते "वह है कहाँ" ।

कर दिखाते हैं असमय को वही समय यहाँ ॥

उलझने आकर उन्हें पड़ती हैं जितनी ही, जहाँ ।

वे दिखाते हैं नया उत्साह उतना ही वहाँ ॥

डाल देते हैं विरोधों सैकड़ों ही अडचलें ।

वे जगह से काम अपना ठीक करके ही टलें ॥ ६ ॥

जो रुकावट डाल कर होवे कोई पर्यंत खड़ा ।-

तो उसे देते हैं अपनी युक्तियों से वे उड़ा ॥

बीच में पड़कर जलधि जो काम देवे गड़बड़ा ।

तो बना देंगे उसे वे क्षुद्र पानी का घड़ा-॥

बन खंगालेंगे करेंगे व्योम में वाजीगरी- ।

कुछ अजब धुन काम के करने की उनमें है भरी ॥ १० ॥

सब तरह-से आज जितने देश हैं फूल फले ।

धुद्धि, विद्या, धन, विभव के हैं जहाँ डेरे डले ॥

वे बनाने से उन्हीं के बन गये इतने भले ।

वे सभी हैं हाथ से ऐसे सपूतों क पले ॥

लोग जब ऐसे समय पाकर जनम लेंगे कभी ।

देश की औ जाति की होगी भलाई भी तभी ॥ ११ ॥

भोर का उठना ।

(पद)

भोर का उठना है उपकारी ।

जीवन तरु जिससे पाता है हरियाली अति प्यारी ।

पा अनुपम पानिप तन धनता है बल-सचय-कारी ।

पुलकित, फुसुमित, सुरभित हो जाती है जन-उर क्यारी ॥

लालिमा ज्यो नभ में छाती है ।

त्यो ही एक अनूठी धारा अकनी पर आती है ॥

परम-रुचिरता-सहित सुधा-बुँदों सी बरसाती है ।
 रसमय, मुदमय, मधुर, स्वर्ण-मय सब दिशा-बनाती हैं ॥
 लृण, वीरुध तरु, लता, वेलि को प्रतिपल पुलकाती है ।
 वन उपवन में रुचिर मनोहर कुसुम-वय खिलाती है ॥
 प्रान्तर-नगर ग्राम-गृह-पुर में सजीवता लाती है ।
 उमग उरों तन पुलक जोति नव दृग में उपजाती है ॥
 सदा भोर उठने वालों की यह प्यारी थाती है ।
 यह न्यारी निधि बड़े भाग वाली जनता पाती है ॥

प्रात की किरनें कोमल प्यारी ।

जहाँ तहाँ फलती तरु तरु पर दिखलाती छबि न्यारी ॥
 जब आलोकित करती हैं अबनी कर प्रकृति संधारी ।
 तब युग नयन देख पाते हैं देव-कुसुम कल प्यारी ॥
 जीवन लहर जगमगा जाती है पा दुति रुचकारी ।
 उर नव विभावान बनता है जैसे रंजनि दिवारी ॥

प्रात-पवन है परम निराली ।

तन निरोग करने वाली औषध उसमें है डाली ॥
 उसकी अति रुचिकर शीतलता चाल मृदुलता ढाली ।
 कुसुम कली लौं है जी की भी कली खिलाने वाली ॥
 होती है जनता मलयानिल सौरभ से मतवाली ।
 किन्तु सामने यह रख देती है फूलों की डाली ॥
 प्रात-पवन ही से मिलती है प्रीतिकरी मुखलाली ।
 उसके सेवन से बढ़ती है जीवन-तरु हरियाली ॥

प्रात उठने में कभी न चूको ।

अभिनव-किरण-जाल आरंजित नित अवलोको भू को ॥
 दूध फेन-सम सुकुसुम कोमल तल्प है परम प्यारा ।
 किन्तु कहाँ उससे सपकर है क्या कालिक धारा ॥

प्रातः समय की सहज नोंद है 'बहु विनोदिनी' मीठी ।
 किन्तु पास है प्रातःपथन के अति प्रियता की चीठी ॥
 करो निछावर आलस को उसपरकर पुलकित छाती ।
 'प्रातः अटल' से जो सजीवता है धमनी में आनी ॥
 काम काज की विविध असुविधा जीवन की बहु बाधा ।
 एक प्रातः उठने ही से कम हो जाती है आधा ॥
 बालक युवा सभी पाते हैं उससे सदा सफलता ।
 सबके लिये प्रातः का उठना है अमृत फल फलता ॥

आँख का आँसू ।

[चतुष्पद]

आँख का आँसू ढलकता देख कर ।

जी तड़पे करके हमारा रह गया ॥

क्या गया मोती किसी का है विखर ।

या हुआ पैदा रतन कोई नया ॥ १ ॥

ओस की धूँ के कमल से हैं कहीं ।

या उगलती बूँद हैं दो मछलियाँ ॥

या अनूठी गोलियाँ खादी मदी ।

खेलती हैं खंजनों की लडकियाँ ॥ २ ॥

या जिगर पर जो फफोला था पड़ा ।

फूट करके यह अचानक बह गया ॥

हाय ! या अरमान जो इतन बड़ा ।

आज वह कुछ बूँद बन कर रह गया ॥ ३ ॥

पूछते हो तो कहो मैं क्या कहूँ ।

या किसी का है निरालापन गया ॥

दर्द से मेरे कलेजे का लहूँ ।

देखता हूँ आज पानी बन गया ॥ ४ ॥

१. प्यास थी इस आँख को जिसकी बनी ।
 वह नहीं इसको सका कोई पिला ॥
 प्यास जिससे हो गई है सोगुनी ।
 वाह ! क्या अच्छा इसे पानी मिला ॥ ५ ॥
 ठीक कर लो जाँच लो घोखा न हो ।
 वह सकभते हैं मकर करना इसे ॥
 आँख के आँसू निकल करके कहो ।
 चाहते हो प्यारे जतलाना किसे ॥ ६ ॥
 आँख के आँसू समझ लो बात यह ।
 आन पर अपनी रहो तुम मत अडे ॥
 क्यों कोई देगा तुम्हें दिल में जगह ।
 जब कि दिल में से निकल तुम यों पडे ॥
 हो गया कैसा निराला यह सितम ।
 भेद सारा खोल क्यों तुमने दिया ॥
 यों किसी का हैं नहीं खोते भरम ।
 आँसुओं ! तुमने कहो यह क्या किया ॥ ८ ॥
 भाँकता फिरता है कोई क्यों कुँआ ।
 हैं फसे इस रोग में छोटे बडे ॥
 है इसी दिल से तो वह पैदा हुआ ।
 ॥ क्यों न आँसू का असर दिल पर पडे ॥ ९ ॥
 रग क्यों इतना निराला कर लिया ।
 है नहीं अच्छा तुम्हारा ढग यह ॥
 आँसुओं ! जब छोड तुमने दिल दिया ।
 किस लिये करते हो फिर दिल में जगह ॥ १० ॥
 बात अपनी ही सुनाता है सभी ।
 पर छिपाये भेद छिपता है कहीं ॥

जब किसी की दिल पसीजेगा कभी ।

आँख से आँसू कटेगा क्या नहीं ॥ ११ ॥

आँख के परदों से जो छनकर घहे ।

मैल थोड़ा भी रहा जिसमें नहीं ॥

बूँद जिसको आँख टपकती रहे ।

दिल जलों को चाहिये पानी वही ॥ १२ ॥

हम कहेंगे क्या कहेगा यह सभी ।

आँख के आँसू न ये होते अगर ॥

बाचले हम हो गये होते कभी ।

सैकड़ों टुकड़े हुआ होता जिगर ॥ १३ ॥

है सगों पर रज का इतना असर ।

जब कहे सदमे कलेजे ने सहे ॥

सब तरह का भेद अपना भूल कर ।

आँख के आँसू लहू बन कर बहे ॥ १४ ॥

कता सुनावेंगे भला अब भी खरी ।

रो पड़े हम पत तुम्हारी रह गई ॥

पैठ थी जी में बहुत दिन से भरी ।

आज यह इन आँसुओं में बह गई ॥ १५ ॥

घात चलते बल पड़ा आँसू बसा ।

खुल पड़े बँड़ी सुनाई रो दिया ॥

आज तक जो मैल था जी में जमा ।

इन हमारे आँसुओं ने धो दिया ॥ १६ ॥

क्या हुआ अघेर ऐसा है कहीं ।

सब गया कुछ भी नहीं अब रह गया ॥

टूटते हैं पर हमें मिलना नहीं ।

आँसुओं में दिल हमारा बह गया ॥ १७ ॥

लाल आखें फीं, घटुत विगडे घने ।

फिर उठाई दौड कर अपनी छडी ॥

बैसे ही अब भी रहे हम तो तने ।

आंख से यह बूंद कैसी दल पडी ॥ ३१ ॥

बूंद गिरते देख कर यों मत कहो ।

आंख तेरी गड गई या लड गई ॥

जो समझते हो नहीं तो चुप रहो ।

॥ ककरो इस आख में है पड गई ॥ ३२ ॥

हे यहां कोई नहीं धुआं किये ।

लग गई मिरच न सरदी है हुई ॥

इस तरह आंख भर आये किस लिये ।

आंख में ठडी हवा क्या लग गई ? ॥ ३३ ॥

देख करके और का होते भला ।

आंख जो बिन आगही यों जल मरे ॥

दूर से आंख उमड कर तो चला ।

पर उसे कैसे भला ठढा करे ॥ ३४ ॥

पाप करते हैं न डरते हैं कभी ।

चोट इस दिल ने अभी खाई नहीं ॥

सोच कर अपनी बुरी करनी सभी ।

यह हमारी आख भर आई नहीं ॥ ३५ ॥

हे हमारे औगुनों की भी न हद ।

हाय ! गरदन भी उधर फिरती नहीं ॥

देख करके दूसरों का दुख दरद ।

आख से दो बूंद भी गिरती नहीं ॥ ३६ ॥

किस तरह का वह कलेजा है बना ।

जो किसी के रंज से हिलता नहीं ॥

आंख से आसू छना तो क्या छना ।
 दर्द का जिसमें पता मिलता नहीं ॥ ३७ ॥
 वह कलेजा हो कई टुकड़े अभी ।
 नाम सुनकर जो पिघल जाता नहीं ॥
 फूट जाये आख वह जिसमें कमी ।
 प्रेम का आसू उमड़ आता नहीं ॥ ३८ ॥
 पाप में होता है सारा दिन बसर ।
 सोच कर यह जी उमड़ आता नहीं ॥
 आज भी रोते नहीं हम फूट कर ।
 आसुओं का तार लग जाता नहीं ॥ ३९ ॥
 बू बनावट की तनक जिनमें न हो ।
 चाह की छीटें नहीं जिन पर पड़ी ॥
 प्रेम के उन आसुओं से हे प्रभो !
 यह हमारी आख तो भींगी नहीं ॥ ४० ॥

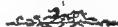


लाला भगवानदीन रचित ।

(प्रेम मंत्र । 'मनोरंजन' से)

चढ पहाड पर यही पुकारो, मैदानों में यही उचारो ।
 "धृष्टा द्वेष सब दूर धरेंगे, सबसे मिलमिल प्रेम करेंगे ।"
 प्रेम फौज का साज सजा कर, प्रेम दुदुभी मधुर बजाकर ।
 सहमत हो सब काम करेंगे, भारत में आनन्द भरेंगे ॥
 दिन में निशि में सभी समय में, मस्तक में और मृदुल हृदय में ।
 यह विचार मित्रों के भरना, "पारस्परिक द्वेष परि हरहा ।"
 "द्वेषभाव में आग लगाकर, भूठ और श्रन्याय भगाकर ।"
 "सब पर प्रेम बारि ढारेंगे, भारत के सुकार्य सारेंगे ॥"

जल में थल में और पवन में, हिन्दूगण में और यवन में ।
 फैला दो विचार शुभ ऐसा, "हम में तुम में अन्तर कैसा?"
 "भाई है घर एक हमारा, भाई बन कर करो गुजारा ।"
 तब सबके सब काम करेंगे, भारत में सुख चैन भरेंगे ।
 लोभ क्रोध को मार भगाओ, वैर वाद ये आग लगाओ ॥
 प्रेम राज्य जग में फैलाओ, प्रेम प्रेम की धूम मचाओ ।
 भारत का जो भला विचारो, यह सिद्धान्त हृदय में धारो ॥
 "प्रेम मन्त्र जिसने, मन धारा, उसने विजय किया जग सारा"
 प्रेम रज्जु सिंहा को बाधे, प्रेम मन्त्र सब कारज साधे ॥
 प्रेम आंच पत्थर पिघलावे, प्रेम वायु - ब्रह्मांड हिलावे ।
 प्रेम-चोट हीरे को फोड़े, प्रेम-गोंद टूटे को जोड़े ॥
 हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, सबो परस्पर प्रेम मिठाई ।



पण्डित रामचरित उपाध्याय कृत ।

बन्धु विलाप ('रामचरित चिन्तामणि' से)

लक्ष्मण गिरे घन-नाद की जब शक्ति आ उर में लगी,
 रोके रुकी रण में न तब भयभीत कपि-सेना भगी ।
 अति-दीन मुख गत चेत लक्ष्मण को लखाजब राम ने,
 होकर विकल करने लगे रोदन सभी के साम्हने ॥ १ ॥
 धोखा न दो भैया ! मुझे इस भाति आकर के यहा,
 मझधार में मुझको बहा कर तात ! जाते हो कहा ।
 जाने न पावोगे, नहीं मारा गया अरि-दल अभी,
 तुमको न करना चाहिये हे अग ! मुझने छल कभी ॥ २ ॥
 भैया तुम्हीं यदि चलि बसोगे, मैं करूंगा क्या यहा ?
 मैं भी चढूंगा साथ में तुम तात ! जावोगे जहां ।

शिवसिंहसरोज

एक सहस्र कवियों का जीवनचरित्र



संप्रदक्ता

श्व० ठाकुर शिवसिंहजी सेगर

काँथा, जिला उन्नाव

प्रकाशक —

नवलकिशोर-प्रेस, लग्नऊ.

सन १९२६ ई०

जल में थल में और पवन में, हिन्दूगण में और यवन में ।
 फैला दो विचार शुभ ऐसा, "हम में तुम में अन्तर कैसा?"
 "भाई है घर एक हमारा, भाई बन कर करो गुजारा ।"
 तब सबके सब काम करेंगे, भारत में सुख चैन भरेंगे ।
 लोभ क्रोध को मार भगाओ, चैर याद ये आग लगाओ ॥
 प्रेम राज्य जग में फैलाओ, प्रेम प्रेम की धूम मचाओ ।
 भारत का जो भला विचारो, यह सिद्धान्त हृदय में धारो ॥
 "प्रेम मन्त्र जिसने मन धारा, उसने विजय किया जग सारा"
 प्रेम रज्जु सिंहा को बांधें, प्रेम मन्त्र सब कारज साथे ॥
 प्रेम आँच पत्थर पिघलावे, प्रेम वायु ब्रह्मांड हिलावे ।
 प्रेम-चोट हीरे को फोड़े, प्रेम-गोद टूटे को जोड़े ॥
 हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, चलो परस्पर प्रेम मिठाई ।



पण्डित रामचरित उपाध्याय कृत ।

बन्धु विलाप ('रामचरित चिन्तामणि' से)

लक्ष्मण गिरे घन नाद की जय-शक्ति आ उर-र्म लगी,
 रोके रुकी रण में न तब भयभीत कपि सेना भगी ।
 अति-दीन मुख गत-चेत लक्ष्मण को लखा जय राम ने,
 होकर विकल करने लगे रोदन सभी के साम्हने ॥ १ ॥
 धोखा न दो भैया ! मुझे इस भाति आकर के यहा,
 मझधार में मुझको बहा कर तात ! जाते हो कहाँ ।
 जाने न पायागे, नहीं मारा गया अरि दल अभी,
 तुमको न करना चाहिये हे अग ! मुझसे छल कभी ॥ २ ॥
 तुम्हीं यदि चलि बसोगे, मैं करूँगा क्या यहा ।
 चलूँगा साथ में तुम तात ! जायोंगे जहा ।

अब जानकी की जान भी बँचन न पावेगी कभी,
 अर हा ! अयोध्या दखने में भी न आवेगी कभी ॥ ३ ॥
 यदि जानकी सी नायिका मिल जाय तो अचरज नहीं,
 'साकेत' से कुछ कम न है अमरावती की भी मही ।
 पर हाय ! अनुगामी अनुज तुम-सा मिलेगा अर कहाँ,
 'सौना सुगन्धित रोजने पर भी मिलेगा कब कहाँ ? ॥ ४ ॥
 'सौमित्र ! तुम सब काम में मुझसे सदा पीछे रहे,
 मेरे लिये क्या-क्या न तुमने हृद्विदारक दुख सहे ? ।
 पर अग्रगामी आज क्यों बनने लगे हा बोल दो,
 देखो तनिक मेरी दशा को शीघ्र आँखें खोल दो ॥ ५ ॥
 जिस रीति से आए जगत में बस उसी क्रम से चला,
 शोकाग्नि में मैं हूँ गिरा, मत इस समय मुझको छला ।
 कुछ काल तक ठहरो अभी आगे चलूँगा मैं वहाँ,
 मुझको यहाँ पर छोड़ तुम हो चाहते जाना जहाँ ॥ ६ ॥
 तुम हाथ मेरा छोड़ते हो साथ देगा कौन अर ? ।
 क्या रुष्ट हो मुझसे ? कहाँ कैसे हुए हो मोन अर ।
 मेरी प्रतिज्ञा पूर्ण कैसे हो सकेगी अब यहा,
 तुम भी रहोगे जो नहीं, मैं क्या करूँगा तर यहा ? ॥ ७ ॥
 निज कम को प्रिय धर्म को भी छोड़ दूँगा मैं अभी,
 परिवार से ससार से मुझ मोड़ दूँगा मैं अभी ।
 पर स्वप्न में भी एक पल तुमको न छोड़ूँगा कभी,
 'तुमसे रहित हो शत्रुओं से कर न जोड़ूँगा कभी ॥ ८ ॥
 मेरे करों से क्षीर पी कर, तिल विमिश्रित नीर क्यों-
 हा चन्धु ! पीना चाहते हो ? हो गये बेपीर क्यों ? ।
 पहले चिता में मैं गिरूँगा गोद में ले कर तुम्हें ॥
 जीवित रहूँगा हाय ! कैसे काल को देकर तुम्हें ॥ ९ ॥

अन्तिम किया मैंने पिता की की नहीं, की सिद्ध की,
 उपकार के सत्कार मैं उसको मिली गति सिद्ध की ।
 इस हेतु क्या विधि रुष्ट होकर मारने तुमको चला ?
 चलने न पावेगी अनुज पर एक भी उसकी कला ॥१०॥
 तुमको मिटाने के प्रथम विधि, आप ही मिट जायगा,
 यमराज भी तिज राज से बस आज ही हट जायगा ।
 कैसे तुम्हारा लय प्रलय आप बिना हो जायगा,
 खोना पड़ेगा तब तुम्हें ससार जय-खो जायगा ॥११॥
 सीता गई तुम भी चले, मैं भी न जीऊंगा कभी,
 सुग्रीव को भी साथ ले घर जायेंगे बन्दर सभी ।
 पर हाय ! भैया वह विभीषण भक्त जावेगा कहाँ ?
 मेरे लिये हो कर अकिंचन ठौर पावेगा कहा ? ॥१२॥
 सीता-हरण मेरा मरण सुन कैकयी होवे सुखी,
 पर शेष मातायें भला कैसे न होंगी दुखी ।
 किस दुर्दशा को प्राप्त होंगी वे, कहो कुछ ध्यान है ?
 क्यों बोलते कुछ हो नहीं, मैं कौन हूँ कुछ ज्ञान है ? ॥१३॥
 मैं सब अनर्थों का जनक माता हृदय, का शूल हूँ ।
 रघुवंश का अगर हूँ सर विग्रहों का मूल हूँ ॥
 मानों मही पर हो गया मेरा अपरिमित भार है,
 मुझसे अभागों का सदा धिक्कार है धिक्कार है ॥१४॥
 वन में तुम्हें खो कर अयोध्या में न जाऊंगा कभी,
 जा कर वहा कैसे किसी को मुख दिखाऊंगा कभी ।
 स्वर में पिता से क्या कहूंगा, यदि चलूंगा मैं वहा,
 मैं क्या करूँ कैसे मरूँ, वालो अनुज जाऊँ कहाँ ? ॥१५॥
 धनहीन हो, अनर्हिन हा खीहीन हो जीता रहा,
 वह कौन ऐसा दुःख है मुझ पर न जो बीता रहा ।

केवल तुम्हारा बल रहा विधि ने उसे भी ले लिया,
 निज कुल, विनाशक हो अनुज क्या पाप था मैंने किया ॥१६॥
 मेरे सहायक बन अनुज ! बन मैं स्वयं आप रहे,
 मेरे लिए ही हा धृथा तुमने अनेको दुख सहे ।
 मुझको अकेला छोड़ कर क्यों भागते हो अब कहो ।
 मैंने तुम्हारा साथ छोड़ा था कहा पर कब कहो ॥१७॥
 यदि भेंट होगी जानकी से या सुमित्रा से कहीं ।
 तो क्या कहूँगा मैं तनिक उठ कर बताओ तो सही ।
 यदि तुम नहीं तो कुछ नहीं मेरा रहा संसार में,
 सर्वस्व मेरा नष्ट हो कर मिल गया अब छार में ॥१८॥
 संजीवनी लाने गया हनुमान भी आया नहीं,
 मारा गया ! वह, या उसे उसने अभी पाया नहीं ।
 होते सबेरा - कूच डेरा आपका हो जायगा,
 लक्ष्मण ! शमन तब केकयी के ताप का हो जायगा ॥१९॥
 इसी बीच मैं वायु के पुत्र आये,
 हुई युक्ति सौमित्र ने प्राण पाये ।
 मिले बन्धु दोनों, दला शोक भारी
 विधे ! बन्ध है लोक-लीला तुम्हारी ॥ २० ॥

सज्जन । ('सूक्तिगुप्तावली' से)

ऊँच नीच दोनों में, सज्जन कुछ भी न भेद रखता है ।
 फूल सुगन्धित करता है देखो गुम्फ हाथों को ॥ १ ॥
 यद्यपि निष्फल तो भी, सज्जन खल का सहाय करता है ।
 क्या फल है ऊपर से, मेघ घटा भी घरसाता है ॥ २ ॥
 सड़क में भी सज्जन, स्वभाव अपना कभी नहीं तजता ।
 अर्ध-असित सुधाकर सुखकर होता कुमुद-बन को ॥ ३ ॥

सज्जन जो कहता है, चाहे कुछ हो न फिर पलटता है ।
 दात निकल करिवर के, भीतर क्या फिर कभी जाते हैं ॥ ४ ॥
 दुख सह कर भी सज्जन, पर-दुख को वह न देख सकता है ।
 आतप सहकर भी नरु, छाया देता पथिक-जन को ॥ ५ ॥
 अति दुख में भी सज्जन, नहीं करेगा कभी बुरे कर्म ।
 छाँछ नहीं छूता है, इस भले ही मरे भूखों ॥ ६ ॥
 सज्जन ही पर क्या, अच्छी चीजें बहुत नहीं होती ।
 मोती कहीं कहीं है, सीप सभी ठौर मिलता है ॥ ७ ॥
 पारस-सम पारस है, कल्पद्रुम के समान कल्पद्रुम ।
 सुरभी सम सुरभी है, सज्जन ही तुल्य सज्जन के ॥ ८ ॥

चन्दन और सज्जन की समता ।

दीन साधु क्या दे सकता है ? पर निज गुण से खुश करता है ।
 चन्दन नहीं खिलाता फल को, किन्तु चाह उसकी भूतल को ॥ १ ॥
 यद्यपि दुर्जन दुःख देता है, तो भी उसे साधु सेता है ।
 चन्दन का विष देता विषधर, वह उसका रखता है उसपर ॥ २ ॥
 सज्जन पिस जाता है तो भी, पर-उपकार किया करता है ।
 चन्दन घिस जाता है तो भी, निज आमोद दिया करता है ॥ ३ ॥
 नीच जाति भी हाकर सज्जन, निज गुण से गौरव पाता है ।
 अहा काठ भी होकर चन्दन, इस शीश पर चढ़ जाता है ॥ ४ ॥
 पड़ जावे कुसङ्ग में सज्जन, तो भी उसमें गुण रहता है ।
 अहि के संग रहता है चन्दन, जन-मताप तदपि रहता ।
 सज्जन स्वार्थ नहीं रखता है, निज समान सबको क
 म्यय सुगन्धित होकर चन्दन, अपने सम कर देता
 करता हुआ शत्रु सम्मानित, सुख सह
 हुआ धूम आमोदिन—पावक का, चन्दन

अपने प्राणों को भी देकर, पर-दुख को भजन करता है ।
चन्दन भी ज्यों कट जाने पर तप्तों को शीतल, करता है ॥ ८ ॥

माता का पुत्र को उपदेश ।

पुत्र ! साथ तेरे रहती हूँ, तेरे हित में चित धरती हूँ ।
इस कारण जो कुछ करती हूँ, सुनकर उसे हृदय में धरना ॥१॥
रात नहीं हे श्रम उठ बैठो, आलस से निज टेह न पैठो ।
सत्य-सुधार सिन्धु में पेटो, पुत्र चित्त में जरा न डरना ॥ २ ॥
रहे नहीं थे पिता तुम्हारे, चेत करो नैनों के तारे ।
दोगे जो तुम भी न सहारे, बेटा ! मेरा कठिन उबरना ॥ ३ ॥
सकट में भी कभी न रोना, धर्म कर्म से विमुक्त न होना ।
जग जाने पर कभी न साना, पुत्र ! प्रथम हरिनाम सुमिरना ॥४॥
पर से अपना दुःख न कहना, गुरुजन की यात तुम सहना ।
सच्चरित्र धन कर नित रहना, इधर उधर सुत ! वृथान फिरना ॥५॥
साहस, शक्ति, धीरता, उद्यम, सीखो ये गुण करो पराक्रम ।
ईश सहायक होगा हरदम, आलस नद में भूल न गिरना ॥ ६ ॥
शिनि, दधीचि, कर्णादि कहानी, सुनकर सीखो नीति पुरानी ।
यनना कभी न सुत ! अभिमानी, परहित से तुम कभी न मुड़ना ॥७॥
जयतक तुम पयपान करोगे, नित नीरोग-शरीर रहोगे ।
फूलोगे नित नये फलांगे, पुत्र ! कभी मदपान न करना ॥ ८ ॥
भीख मांगना एकदम छोड़ो, दासवृत्ति से भी मुक्त मोड़ो ।
सर्पके साथ, अपनयो जोड़ो, पढ़ो पुत्र ! शुभ उद्यम करना ॥ ९ ॥
जो कुछ कहदो हाथ उठाकर, उससे कभी हठमत तिल भर ।
सभ्य श्रोत शिक्षित कइलाकर, उचित सदा प्रण-पालन करना ॥१०॥
पर दुख को अपना दुख मानो, देश-मान, को अपना जानो ।
पुत्र ! वृथा ही हठमत ठानो, सीखो तुम पर-दुख को हरना ॥११॥

निज पूर्वज लोगों ने कैसे, काम किये, रहते थे कैसे ।
 उचित तुम्हारा रहना वैसा, अनुचित बेढा ! उससे डरना ॥१२॥
 स्वारथ को जो धर्म समझते, पर को दुख देकर हैं हँसते ।
 ईश्वर से भी तनिक न डरते, समझो उन्हें शीघ्र है मरना ॥१३॥
 जो धोखा देने वाला हो, मुँह मीठा दिल का काला हो ।
 सागर हो या नद नाला हो, उसके साथ कभी मत तरना ॥१४॥
 कपट्टी, कुदिल, कुमति, कुलघालक हैं पर बनते हैं जगपालक ।
 जो ऐसे हों, हे प्रिय घालक ! उनकी हाँ में हाँ मत करना ॥१५॥
 जहाँ न्याय का नाम नहीं है, पक्षपात की धार वही है ।
 मेरा यह उपदेश सही है, पुत्र वहाँ तू नहीं ठहरना ॥१६॥

श्रीयुत मैथिली शरण गुप्त रचित ।

स्वर्गीय संगीत । ('सरस्वती' से)

नर हो, न निराश करो मन को ।
 कुछ काम करो कुछ काम करो,
 जग में रह के कुछ नाम करो ।
 यह जन्म हुआ किस अर्थ अहो,
 समझो जिसमें यह व्यर्थ न हो ।
 कुछ तो उपयुक्त करो तन को,
 नर हो, न निराश, करो मन को ॥ १ ॥
 संभलो कि सुयोग न जाय चला,
 कब व्यर्थ हुआ सदुपाय मला ?
 समझो जग कौन निरा सपना,
 पथ आप प्रशस्त करो अपना ।

अखिलेश्वर हैं अवलम्बन को,
 नर हो, न निराश करो मन को ॥ २ ॥
 जल तुल्य निरन्तर शुद्ध रहो,
 प्रचलानल ज्यों अनिरुद्ध रहो ।
 पवनोपम सत्कृति सील रहो,
 अवनीतलवद् धृतिशील रहो ।
 कर लो नभ सा शुचि जीवन को,
 नर हों न निराश करो मन को ॥ ३ ॥
 जय हैं तुम में सच तत्त्व यहाँ,
 फिर जा सकता वह सत्त्व कहाँ ?
 तुम स्वत्व सुधारस पान करो,
 उठके अमरत्व विधान करो ।
 दध-रूप रहो भव कानन को,
 नर हो, न निराश करो मन को ॥ ४ ॥
 निज गौरव का नित ज्ञान रहे,
 "हम भी कुछ हैं" यह ध्यान रहे ।
 सच जाय अर्भी, पर मान रहे,
 मरणोत्तर मुखित गान रहे ।
 कुछ हो, न तजो निज साधन को,
 नर हो न निराश करो मन को ॥ ५ ॥
 प्रभु ने तुमको कर दान किये,
 सब चाञ्छित वस्तु विधान किये ।
 तुम प्राप्त-करो उनको न अहो,
 फिर है किसका-यह दोष कहाँ ?
 समझो न अलम्ब किसी धनको,
 नर हो, न निराश करो मन को ॥ ६ ॥

किस गौरव के तुम योग्य नहीं ?

॥ क्य कौन तुम्हें सुख भोग्य नहीं ?

जन हो तुम भी जगदीश्वर के,

(सच हैं जिसके अपने घर के)

फिर दुर्लभ क्या उसके जन को ?

नर हो, न निराश करो मन को ॥ ७ ॥

करके विधिवाद न खेद करो ।

निज लक्ष्य निरन्तर भेद करो ।

बनता बस उद्यम ही विधि है,

मिलता जिससे सुख का निधि है ।

समझो धिक् निष्कय जीवन को,

नर हो न निराश करो मन को ॥ ८ ॥



श्रीयुत “सनेही” रचित ।

धीर नर । (‘सरस्वती’ से)

पडे विपद पर विपद किन्तु पद पीछे नहीं हटाते हैं;
अपना रोना कभी न रोते साहस नहीं घटाते हैं ।
बन पड़ता है जहाँ तलक दोनों का दुःख घटाते हैं;
निज पौरुष से समर भूमि में अरि को धूल चटाते हैं ।
वही धीर नर धरा धाम में धरल कीर्ति नित पाते हैं ॥ १ ॥
अत्याचारी की गर्दन को भट्ट मरोड़ के देते हैं,
अन्यायी का मुख थप्पड़ से सदा मोड़ के देते हैं ।
कोटि विघ्न आ पडे कार्य निज नहीं छाड़ के देने हैं,
लाय विफलताओं पर भी दिल नहीं ताड़ के देते हैं ।

धीर धुरन्धर वही वीर वर विश्व-विदित हो जाते हैं ॥ २ ॥
 मनुज केसरी इस भय-वन में भय-गज मार-भगाते हैं,
 पड़े लोह पिंजड़े में तो भी घास-कदापि न खाते हैं ।
 दम में दम जब तक रहता है अपनी आन निभाने हैं,
 श्वाभ समान दशन दिखला कर वे दुम नहीं हिलाते हैं ।
 उनकी सूरत देख भीरु भय भूरि भरे थरते हैं ॥ ३ ॥
 चाल चले उनमें कोई क्या नहीं काल से डरते हैं ।
 शूरो की ससार-समर में सन्तत करणी करते हैं ॥
 मार मार कर दुष्ट दलों को भार भूमि का हरते हैं ।
 हो जाते हैं अमर जगत में कभी नहीं वे मरने हैं ॥
 कीर्ति-कौमुदी से अपनी चे विमल चन्द्र बन जाते हैं ।
 अटल सदा निज प्रण पर रहते करते सत्पथ त्याग नहीं ॥
 अत्याचारी अधम जनों से उनको है अनुराग नहीं ।
 नहीं चाहते हलुआ पूड़ी असन मिले पर साग नहीं ॥
 पर स्ततन्त्रता पर वे अपनी लगने देते दाग नहीं ।
 धृति धारण कर ध्रुव से घनते धीर वही कहलाते हैं ॥ ५ ॥

श्रीयुत रूपनारायण पाण्डेय रचित ।

“ घन विहङ्गम । (‘प्रभा’ से) ”

(१)

घन बीच वसे थे, फँसे थे ममत्व में, एक कपोत कपोती कहों ।
 दिन रात न एक को दूसरा छोड़ता, पेमे हिले मिले दोनों बरा ॥
 बढने लगा नित्य नया नया नेह, नई नई कामना होती रहों ।
 कहने का प्रयोजन है इतना, उनके सुख की रही सीमा नहीं ॥

(२)

हता था कबूतर मुग्ध सदा, अशुराग के राग में मस्त हुआ ।
 करती थी कपती कभी यदि मान, मनाता था पास जान्यस्त हुआ ॥
 जब जो कुछ चाहा कबूतरी ने, उतना वह वैसे समस्त हुआ ।
 इस भाति परस्पर पक्षियों में भी प्रतीति से प्रेम प्रशस्त हुआ ॥

(३)

सुविशाल घनों में उड़े, फिरते अबलोकते प्राकृत चित्र-छटा ।
 कहीं शस्य ये श्यामल खेत खड़े, जिन्हें देख घटा का भी मान घटा ॥
 कहीं कोसों उजाड़ में भाड़ पड़े, कहीं आड़ में कोई पहाड़ सटा ।
 कहीं कुंज, लता के वितान तने, सब फूलों का सौरभ था सिमटा ॥

(४)

भरने भरने की कहीं भनकार, फुहार का हार विविध ही था ।
 हरियाली निराली, न माली लगा, फिर भी सब दग पवित्र ही था ॥
 ऋषियों का तपोवन था, सुरभी का जहा पर सिंह भी मित्र ही था ।
 बस, जान लो, सात्विक सुन्दरता, सुखसयुतशान्तिकाचित्रही था ॥

(५)

कहीं भील किनारे बड़े बड़े ग्राम, गृहस्थ निवास घने हुए थे ।
 खपरेलों में कहु, करैलों की बेल के खूब तनाव तने हुए थे ॥
 जल शीतल, अन्न जहा पर पाकर, पक्षी घरों में घने हुए थे ।
 सब ओर स्वदेश-स्वजाति-समाज-भलाई के ठान ठने हुए थे ॥

(६)

इस भांति निहारने लोक की लीला, प्रसन्न वे पक्षी फिर घर को ।
 उन्हें देखते दूर ही से, मुख खाल के, चबे चले चट बाहर को ॥
 बुलराने, बिलाने-पिलाने से था श्रवकाश उन्हें न घड़ी भर को ।
 कुछ ध्यान ही था न कबूतर को, कहीं काल बड़ा रहा है शर को ॥

(७)

दिन एक यड़ा ही मनोहर था, छवि छाई वसन्त की कानन में ।
सब ओर प्रसन्नता देख पड़ी, जड़—चेतन के तन में, मन में ॥
निकले थे कपोत-कपोती कहीं, पड़े झुंड में घूम रहे वन में ।
पहुँचा यहाँ घोसले पास शिकारी, शिकार की ताक में निर्जन में ॥

(८)

उस निर्दय ने उसी पेड़ के पास, बिछा दिया जाल को कौशल से ।
यहाँ देर के अन्न के दाने पड़े, चले बच्चे, अभिन्न जो थे छल से ।
नहीं जानते थे, कि यहाँ पर है कहीं, दुष्टो मिखा पड़ा भूतल से ॥
बस, फाँस के वास के बन्धन में, कर देगा हलाल हमें बल से ॥

(९)

जब बच्चे फाँसे उस जाल में जा, तब ये घबड़ा उठे बन्धन में ।
इतने में कबूतरी आई वहाँ, दशा देख के व्याकुल हो मन में —
कहने लगी, “हाय हुआ यह क्या ! सुत मेरे हलाल हुए वन में !
अब जाल में जाके मिलूँ इनसे, सुख ही क्या रहा इस जीवन में !”

(१०)

उस जाल में जाके धहेलिये के, ममता से कबूतरी आप गिरी ।
इतन में कपोत भी आया वहाँ, उस घोसले में भी विपत्ति निरी ।
लखते ही अंधेरा सा आगे हुआ, घटना की घटा वह घोर घिरी ।
भयनों से अचानक बूढ़ गिरे, चेहरे पर शोक की स्याही फिरी ॥

(११)

तब दीन कपोत बड़े दुख से कहने लगा—“हा ! अति कष्ट हुआ ।
निबलों ही को दैव भी मारता है” ये प्रवाद यहाँ पर स्पष्ट हुआ ॥
सब सुना किया, चली छोड़ प्रिया, सब ही विधि जीवन नष्ट हुआ ।
इस भाति अभाग्य अतृप्त ही, मैं, सुख भोग के स्वर्ग से नष्ट हुआ ॥

(१२)

कल कृजन केलि-कलोल में लिप्त हो, बच्चे मुझे जो सुखी करते ।
जब देखते दूर से आता मुझे, किलकारियाँ मोड़ से जो भरते ॥
समुहाय के, धाय के, आय के पास, उठाय के पख नहीं डरते ।
वही हाय ! हुप असहाय, अहो ! इस नीच के हाथ से हँ भरते ॥

(१३)

गृह-लक्ष्मी नहीं, जो जगाए रहा करती थी सदा सुख-कल्पना को ।
शिशु भी तो नहीं, जो उन्हीं के लिये सहता इस दारुण वेदना को ॥
वह सामने ही परिवार पड़ा पड़ा भोग रहा यमयानना को ।
“अब मैं ही वृथा इस जीवन को रस कैसे सहूँगा बिडम्बना को ?”

(१४)

यहा सोचता था योंकपोत, वहा चिड़ीमार ने मार निशाना लिया ।
गिर, लोट गया धरती पर पक्षी, बहेलिये ने मन माना किया ॥
पल में, कुल का कुल काल कराल ने 'भूत-भविष्य' में भेज दिया ।
क्षणभंगुर जीवन की गति का यह एक निदर्शन है यदिया ॥

(१५)

हर एक मनुष्य फँसा जो ममत्व में, तत्त्व महत्त्व को भूलता है ।
उसके शिर पे खुला सङ्ग सदा, बँधा धागे में धार से भूलता है ।
वह जाने बिना विधि की गति को, अपनी ही गढन्त में फूलता है ॥
पर अन्त को ऐसे अचानक अन्तक अस्त्र अवश्य ही हूलता है ।

(१६)

पर जो जन भोग के साथ ही योग के काम पवित्र किया करता ।
परिवार से प्यार भी पूर्ण रखे, पर-पीर परन्तु सदा हरता ॥
निज भावन भूलि के, भार्या न भूल के, विघ्न व्यथा को नहीं डरता ।
कतकल्य हुआ हँसते हँसते, वह सोच सकोच बिना मरता ।

(१७)

प्रिय पाठक ! आप तो बिजे ही ह फिर आपको क्या उपदेश करें ।
शिर पै शर ताने बहेलिया काल खड़ा हुआ है, यह ध्यान धरें ॥
दशा अन्न को होती रुपोत की पेसी, परंतु न आप जरा भी डरें ।
निज धर्म के कर्म सदैव करें, कुछ चिन्ह यहां पर छोड़ मरें ॥

— * —

श्रीयुत कामताप्रसाद गुरुलिखित ।

ॐ बेटी की विदा ॐ

प्यारी बहिन ! सौंपती हूं मैं अपना तुम्हें खजाना ।
है इस पर अधिकार तुम्हारे बेटे का मनमाना ॥
रक्त मांस ओ हाड हमारा है यह बेटी प्यारी ।
करो इसे स्वीकार हुई यह अब सब भांति तुम्हारी ॥ १ ॥

॥ पूजे कई देयता हमने तब इसको है पाया ।
प्राण समान पाल कर इसको इतना बड़ा बनाया ॥
यही आत्मा आज हमारी हम से बिछुड रही है ।
समझाती हूं जी को तो भी धरता धीर नहीं है ॥ २ ॥

बहिन ! ढिठाई माता की तुम मन में न धरियो ।
इस कामल प्रियता की रक्षा बड़े चाव से करियो ॥
है यह नम्र मेमन से भी भीर मृगी से बढ कर ।
कड़ी बात या चितवन से यह कँप जाती है थरथर ॥ ३ ॥

है गँवार यह भोली भाली, नहीं शिष्टता जाने ।
तो भी यह गुरुजन की आज्ञा बड़े प्रेम से मानै ॥

ॐ Kumbha's Letter के एक अंग्रेजी पत्र का अनुवाद । विवाह हो जाने पर लड़की की माँ, लड़के की माँ को अपनी लड़की सौंप रही है । मूल अंग्रेजी कविता दक्षिण की है । यहाँ यह धार है ।

साँचे में तुम इसे ढालियो, कभी न यह तडकेगी ।
 बहिन ! सिखाने से चतुराई, बेटी सीख सकेगी ॥ ४ ॥
 यह गुड़िया, यह लक्ष्मी अपनी जीवन-मूल दुलारी ।
 हृदय थाम कर करती हूँ मैं अब आँखों से न्यारी ॥
 माता-नेह सोच तुम मन में दुख मेरा अनुमानी ।
 छुपे नहीं है प्रीति छुपाए, बहिन ! सत्य यह जानो ॥ ५ ॥
 इसका रूप निहार दिव्य मैं पल पल सुख पाती थी ।
 गान समान सुरीली बोली इसकी मन भाती थी ॥
 बहिन ! तुम्हें भी ये सब बातें जान पड़ेंगी आगे ।
 अपने नैन रखांगी इस पर जब तुम नित अनुरागे ॥ ६ ॥
 इसकी मद हँसो से मेरा सुख अतिशय बढ जाता था ।
 कठिन धाव भी उससे दुख का अन्धा हो जाता था ॥
 इसे उदास देख आँखों में भर आता था पानी ।
 छुपी नहीं है बहिन ! किसी से माता प्रेम-कहानी ॥ ७ ॥
 बड़ी लालसा भी निज मन की इसने नहीं बताई ।
 कर सकोच कठिन पीडा भी अपनी सदा छुपाई ॥
 तो भी मैं सब लख लेती थी, इसके बिना कहे ही ।
 यों ही तुम इसकी सब बातें, लखियो बहिन सनेही ॥ ८ ॥
 अपना मास पिण्ड देती हूँ मैं तन से कर न्यारा ।
 है यह जीवन मेरे जी का आँखों का ही तारा ॥
 इस अनाथ बच्चे का पालन माता-सम तुम कीजो ।
 मेरी इस बल हीन दशा में बहिन ! बाँह गह लीजो ॥ ९ ॥
 करो बहिन ! स्वीकार दया कर मेरी इतनी दिनती ।
 यच्चों में अपने तुम करियो इस बेटी की गिनती ॥
 दीजै बहिन ! भरोसा मुझको हाथ हाथ में देकर ।
 बेटी-सम पालेंगी इसको हम माता सम होकर ॥ १० ॥

मेरी ये आँखें पीती थीं नित जो रूप मनोहर ।
 क्या उसके दर्शन का मुझको फिर न मिलेगा अबसर ॥
 जिस बोली से धीरे धीरे इसे बुलाती थी मैं ।
 क्या वह भी अब मूक रहेगी रख जो की जो ही मैं ॥११॥
 हा मेरी अनमोल लाइली ! प्राणाधार ! दुलारी !
 क्या तू मुझे नहीं समझेगी अब अपनी-महतारी ॥
 तुझे नई माता मिलती है, मैं तुझको खोती हूँ ।
 यही सोच सुख में भी तेरे बेटी ! मैं रोती हूँ ॥१२॥
 हाय ! आज से हुआ हमारा यह घर भरा अंधेरा ।
 होकर निपट निरास न क्यों अब हृदय फटेगा मेरा ॥
 अब मेरे इस खूने घर को उजला कौन करेगी ।
 कौन मधुर बातों से मेरा रीता हृदय भरेगी ॥१३॥
 कौन सुरीली धीन बजा कर, मधुर गीत गावेगी ।
 घर में कौन लड़किया छोटी न्योत न्योत लावेगी ॥
 सखियों के सग कौन पायगी, खेलेंगी, फूलेंगी ।
 किसको सुन रामायण पढ़ते यह छाती फूलेंगी ॥
 हा बेटी ! हा गुड़िया मेरी ! हा मेरी सुकुमारी !
 तेरे बिना हृदय यह मेरा पावेगा दुख भारी ॥
 केवल दैव दयामय जो दुख जान सके है जन का ।
 वही धीरे दे दूर करेगा सकट मेरे मन का ॥१५॥
 जा कर वहाँ दूर है बेटी ! मुझे भूल मत जाना ।
 कभी कभी इस दुखिया स्त्री भी सुघनिज मन में लाना ॥
 रो मत, बेटी ! जा अपने घर, सग नई माता के ।
 लीजै वहिन ! इसे अब मुझसे, देती हूँ सिर नाके ॥१६॥



‘पाण्डेय लोचन’ प्रसाद, रचित ।

वाक्यस्पृति । ❀

‘कौन ले गया लूट हाथ ! मेम बाल-काल का ‘सुख भाण्डार ?
 कहाँ प्रबल उत्साह, कहाँ अर्ध गई हृदय की शान्ति समूल ?
 कहाँ सखा सङ्गिनी आदि का वह नैसर्गिक प्रेम अपार !
 आस-मिचौनी, सुपद धूल-गृह-खेल कहाँ शैशव सुख मूल !
 चला गया वह समय हाथ ! इस जीवन को करके नि सार ।
 वही नयन, तनु वही, किन्तु है दृश्य आज जग के प्रतिकूल ॥
 मुझे, बाल-सङ्गिनी खेलागण भी करते हैं ‘होहाकार ।
 इस जीवन के भीषण रण में पड, निज निज सुख कर निमूल ॥
 ‘शान्ति-पूर्ण उस बाल-काल’ के पावन सुख की होते याद ।
 शोक-अग्नि से ‘तनु जलता है व्याकुल होते हैं मन प्राण ॥
 स्थायी मुझे प्राप्त होता था पावन शैशव का आह्लाद ।
 था नहीं मेरे बाल हृदय को कुटिल काल’ की गति का ज्ञान ॥
 चिर बन्दी रोता है ज्यों नित सोच सोच निज गृह सुख-स्वाद ।
 त्यों मैं अब व्याकुल होता हूँ उस सुख का कर मन में ध्यान ॥



रामदहिनमिश्र लिखित ।

एक राजपूती भलक (सरस्वती से)

उदय सिंह के शक्त सिंह था प्यारा ढोटा,
प्रयल प्रतापी भट "प्रताप" का भाई छोटा।
था छोटा पर सभी काम थे उसके न्यारे,
जिन्हें देखकर मौन साहसी होते सारे ॥ १ ॥

कहता हूँ मैं एक कहानी उसकी चोखी,
छोटी है, पर है अतीव रसवती अनोखी।
जिससे होगा व्यक्त अलौकिक साहस उसका,
और लगेगा पता पूर्ण उसके मानस का ॥ २ ॥

एक समय तलवार एक घन करके आई,
लगे देखने सभी वहाँ उसकी सुघराई।
करने उसकी जाच लगे तब सूत फार कर,
पर न हुआ सन्तोष "शक्त" को उससे रुचिकर ॥ ३ ॥

आसन अपना छोड़ "शक्त" उठ खड़ा हुआ भट,
बोला मृदु गम्भीर वचन ब्रह्म सुन्दर शिशु भट।
"जो अब से तलवार धीर कर में जायेगी,
नर यूथों का मांस अस्थियुत यह खावेगी ॥ ४ ॥

इस प्रकार क्या ठीक परीक्षा इसकी होगी,
और आप की उचित कभी मर्यादा होगी।
धार परीक्षा करनी हो तो यों करिये फिर,
राजपूत की नाम कीर्ति हो जिससे सुस्थिर ॥ ५ ॥

याँ कह उसने छीन लिया वह खड्ग मनोहर,
 हाँ हाँ कह सब लगे रोकने उसे उठा कर ।
 किन्तु रुका वह नहीं किसी के कुछ भी रोके,
 रुका कहाँ है दृढ़ प्रतिज्ञा जन उद्यत हो के ॥ ६ ॥

उठा तुरत तलवार काट डाली निज उगुली,
 जिससे धर धर उष्ण रक्त धारा वह निकली ।
 किन्तु न इससे हुआ चित्त उसका कुछ विचलित,
 और व्यथा के चिन्ह दिखाई पड़े न किञ्चित् ॥ ७ ॥

पाच वर्ष का शक्त सिंह वह बालक था जब,
 किया इस तरह कार्य कठिन दुःसाहस का तब ।
 रानावंशी नित्य कार्य ऐसे करते थे,
 जिससे वे प्रक्रान्त वीर योधों होते थे ॥ ८ ॥

कवियों का संक्षिप्त परिचय ।

चंदबरदाई—ये जाति के चन्दीजन, दिल्लीपति पृथ्वीराज चौहान के राजकवि और सखा थे । इनके जन्म मरण का समय सन् १२०५-१२४८ माना गया है । इन्होंने पृथ्वीराज का चरित्र अपनी आजस्विनी कविता में एक बृहत् ग्रन्थ में लिखा है । उसका नाम है 'पृथ्वीराज रासो' । इनकी रचना कवित्वपूर्ण पर बड़ी जटिल है, इससे उदाहरण में एक ही पद्य दिया गया ।

विद्यापति—इनके जीवन काल का समय सन् १४०० का पूर्वाद्ध है । सस्कृत के अगाध पाण्डित्य रखने के कारण ये महामहोपाध्याय थे । सस्कृत में इन्होंने कई ग्रन्थ बनाये हैं । ये जैसे सस्कृत के महाकवि थे, वैसे हिन्दी के भी । इनकी कविता में कुछ निथिला भाँपा के शब्द हैं । इनकी मधुर पदावलियाँ बहुत प्रसिद्ध हैं, और वे अंगगृहीत भी हो चुकी हैं ।

कबीर साहेब—इनके जीवन-काल का समय सन् १४०० का शेषार्द्ध है । प्रायः यही सच विद्वानों की राय है । इनका जन्म हिन्दू के घर और पालन पोषण मुसलमान के यहाँ मना गया है । इनके स्वामी रामानन्द के शिष्य होने की बात कही जाती है । मुसलमान होने पर भी इनके विचार हिन्दू के सँ थे । इनकी साधियाँ और भजनों के बड़े २ ग्रन्थ संगृहीत हुए हैं । इनकी कविता मनोहर, शिक्षापूर्ण और गम्भीर है । इनका एक अलग मन है जिसे 'कबीर पद' कहते हैं ।

मीराबाई—इनका जीवन काल सन् १५०० से १६३० के बीच में माना गया है । आदि अन्त में केवल पाँच सात वर्ष का अन्तर है । ये जोधपुर घराने की कन्या थीं और उदयपुर के घराने में ब्याही गयी थीं । बालकपन से ही गिरियर

माना जाता है। ये कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। ये वीररस के महा-
कवि थे। इनकी कविताओं के पढ़ने से जी फडक उठता है।
इनका 'शिवराज भूषण' सबसे प्रसिद्ध ग्रन्थ है और उसमें
शिवाजी महाराज का वर्णन है। शिवाजी के दरबार में इनका
बड़ा आदर था।

मतिराम—भूषण कवि के ये सगे भाई थे। इनका जन्म मरण
१६७४-१७७३ के लगभग माना जाता है। ये शृङ्गार रस के कवि
थे। इनके 'ललित ललाम' चगैरह कई काव्य प्रसिद्ध हैं।

देव—इनका जन्म १७३० और १८०२ के लगभग देवान्त
हुआ। ये मनाढ्य ब्राह्मण थे। मिथ बन्धुओं ने सूर और तुलसी
के साथ इनकी गणना की है। इन्होंने पचासो ग्रन्थ बनाये हैं
और सबके सब उत्तम हैं।

वृन्द—ये १७४१ के लगभग हुए। १७६१ तक इनका रहना
एक ग्रंथ में लिखा है। ये जाति के बन्दीजन और कृष्णगढ़
के महाराज के यहाँ रहते थे। इनका 'वृन्दविनोद सतसई'
नामक एक सुन्दर नीतिमय ग्रन्थ है।

वैताल—इनका जन्म काल १७३४ संवत् माना जाता है। ये
चिक्रम शाह के दरबार में रहते थे। इनके नीतिमय छप्पय ही बहुत
प्रसिद्ध हैं। कोई ग्रंथ इनका अभी तक देखने में नहीं आया।

नागरी दास जी—इनका जन्म १७५६ और मरण १८२१ में
हुआ था। ये कृष्णगढ़ के राजा थे। इन्होंने ७५ ग्रन्थ रचे हैं।
कविता इनकी बड़ी मचोहर और मधुर होती थी।

श्रीहित वृन्दावन दास जी—इनका जन्म १७०० के लगभग
माना जा सकता है। ये जाति के ब्राह्मण थे। १८ हजार से
अधिक छन्द इनके देखने में आये हैं। कहते हैं कि इन महात्मा
ने लाखों पद रचे हैं। इनकी कविता बड़ी उत्तम है।

गिरधर कविराय—इनका भी जन्म १७०० सवत् के ही लग-
भग माना जाता है । इनकी कुण्डलियाँ बहुत पुमिद्ध हैं जो
विशेषतः लोकोक्तियों पर बनी हुई हैं । इसी कारण वे बड़ी
ही लोकप्रिय हैं । इनका छोटा मोटा एक दो संग्रह भी छपा है ।

पद्माकर—इनका जन्म १७१० और स्वर्गवास १८६० म
हुआ । ये तैलंग ब्राह्मण थे । इनके जगद्विनोद, गगलहरी ग्रंथ
बहुत पुमिद्ध हैं । इनकी कविता बड़ी मधुर और शब्दालङ्कार-
पूर्ण हैं । अनुप्रास की तो खूब ही बहार है ।

गाल—ये १६ वीं शताब्दी के शेषार्द्ध में थे । ये जाति के
धन्दीजन थे । इनके छोटे बड़ बीसों ग्रन्थ हैं । ये भी पद्माकर
ही के समान शब्दालङ्कार के प्रेमी थे और कविता में अनुप्रास
की बड़ी भरमार रखते थे ।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र—आपका जन्म १६१७ में और शरीर-
पात १६४१ में हुआ । आपने १७ वर्ष से ही कविता करनी प्रारम्भ
कर दी थी । आपके सब ग्रन्थ छ भागों में खड़गिनास प्रेस
वाकीपुर से प्रकाशित हुए हैं । आपने प्रायः गद्य पद्य बराबर
ही लिखे और काव्य-नाटक इतिहास चरित्र आदि सब प्रकार
के ग्रंथ लिखे और कई पत्र पत्रिकाएँ भी चलायीं । हिन्दी गद्य
को आपसे बहुत सहायता मिली और आप ही के कारण
उसकी बड़ी उन्नति हुई । आप को वर्तमान हिन्दी के जन्म-
दाता कहने में भी कोई अत्युक्ति नहीं होगी । इसीसे आप
नागरी नागर भी कहलाते हैं ।

श्रीर यदु—इनका जन्म १६१६ में हुआ था । ये महाशय
पञ्चम हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सभापति हुए थे । ये ब्रज
भाषा और बड़ी बोली दोनों के पुसिद्ध कवि हैं ।
अयोध्या मिह उपाध्याय—आपका जन्म स० १६२५ में

आप हिन्दी के अच्छे लेखक और कवि हैं ।
और गम्भीर से गम्भीर हिन्दी लिखते हैं और
ब्रजभाषा और खड़ी बोली दोनों ही में करते हैं ।
पूवास, ठेठ हिन्दी के ठाट आदि बहुत

लाला भगवान दीन—इनका जन्म १९३८ में
पद्य दोनों के सुयोग्य लेखक और कवि हैं । १५
प्रशसनीय है ।

प० रामचरित उपाध्याय—ये खड़ी बोली के
सुकवि हैं । आपका 'रामचरित चन्द्रिका'
महाकाव्य आदि बहुत प्रसिद्ध है ।

बाबू मैथलीशरण गुप्त—खड़ी बोली के लिए स
बड़ा नाम है इनके 'भारत भारती' 'जयद्रथ वध'
बड़े ही लोकप्रिय हो रहे हैं ।

प० गयादीन शुक्ल सनेही—ये भी खड़ी बोली
कवि हैं । यद्यपि खड़ी बोली में इनका कोई का
निकला है तो भी सुंदर कवितायें ही इन्हें
कह रही हैं ।

रूपनारायण पाण्डेय—ये भी खड़ी बोली के
कवि हैं । हाल में इनका स्फुट कविताओं का
तिकाला है ।

श्रीगुरु कामता प्रसाद गुरु—ये जैसे सुलेखक हैं वे
भी हैं । इनकी बहुत सी स्फुट कवितायें भिन्न
शुस्तकों में प्रकाशित हैं ।

पाण्डेय लोचन प्रसाद—ये खड़ी बोली के बड़े,
हैं । इनके खड़ी बोली के कई काव्य प्रकाशित हो

